नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचारपत्र • वर्ष 8 अंक 10
नवम्बर 2006 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

अक्टूबर क्रान्ति की 89वीं वर्षगाँठ के अवसर पर

अभी भी जीवित है ज्वाला! फिर भड़केगी जंगल की आग!

सम्पादक

यूँ तो दुनिया लगातार अविराम गति से बनती-बदलती रहती है, पर इसकी गति सदा एकसमान नहीं रहती। इतिहास के कुछ ऐसे गतिरोध भरे कालखण्ड होते हैं जब चन्द दिनों के काम शताब्दियों में पूरे होते हैं और फिर ऐसे दौर आते हैं जब शताब्दियों के काम चन्द दिनों में पूरे कर लिये जाते हैं। महान अक्टूबर क्रान्ति (नये कैलेण्डर के अनुसार 7 नवम्बर) का काल एक ऐसा ही समय था जब सर्वहारा वर्ग की जुझारू क्रान्तिकारी पार्टी के मार्ग-निर्देशन में रूस के मेहनतकश उठ खड़े हुए थे और सदियों पुरानी जड़ता और निरंकुशता की बेड़ियों को तोड़ दिया था। बगावत शुरू करने का संकेत देते हुए आधी रात को युद्धपोत अव्रोरा की तोपों ने जो गोले दागे उनके धमाके मानो पूरी दुनिया में गूँज उठे और पूरी दुनिया में पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध एक प्रचण्ड रणभेरी बन गये।

क्रान्ति के बाद रातोंरात *भूमि-सम्बन्धी आज्ञापत्र* जारी करके जमीन पर जमींदारों का मालिकाना बिना मुआवजे के खत्म कर दिया गया और जमीन इस्तेमाल के लिए किसानों को दे दी गयी, किसानों को लगान से मुक्त कर दिया गया और तमाम खनिज संसाधन, जंगल और जलाशय जनता की सम्पत्ति हो गये। सभी कारखाने राज्य की सम्पत्ति बन गये और तमाम विदेशी कर्जे जब्त कर लिये गये।

फरवरी 1917 में जारशाही निरंकुशता के ध्वस्त होने के बाद बुर्जुआ वर्ग का जो गँठजोड़ सत्ता में आया था उसने कल्पना भी नहीं की होगी कि सर्वहारा इतनी चमत्कारी पहलकदमी दिखायेगा। उसे लेनिन के हाथों गढ़ी गयी शक्तिशाली और युयुत्सु पार्टी की ताकत और तैयारी का अनुमान भी नहीं था। स्वयं पार्टी में भी कुछ लोग इस साहसिक कदम के लिए तैयार नहीं थे और किसी न किसी बहाने इसे टालने की दलीलें दे रहे थे। लेकिन बोल्शेविक पार्टी और मजदूर वर्ग ने लेनिन के इस आह्वान पर अमल किया कि क्रान्ति अभी इसी वक्त, और अभी नहीं तो फिर कभी नहीं!

प्रतिक्रियावादी ताकतों और क्रान्तिविरोधी गद्दारों की तमाम कोशिशों को कुचलते हुये बोल्शेविकों ने सत्ता पर कब्जा कर लिया और रूस के विशाल प्रदेशों में क्रान्ति की विजययात्रा सुनिश्चित करने के लिए अपनी पूरी ताकत झोंक दी। लेकिन पूँजी की ताकतें इतनी जल्दी कहाँ हार मानने वाली थीं। मजदूरों के राज को तहस-नहस करने के लिए जनरल देनिकिन, कोल्चाक और पेतल्यूरा को फौज-फाटे से लैस करके भेजा गया। इधर-उधर बिखर गये श्वेत गार्डों के दस्ते और क्रान्तिविरोधियों के विभिन्न गुटों ने जगह-जगह लड़ाई और मार-काट मचा रखी थी। इसी बीच अठारह देशों की सेनाओं ने एक साथ रूस पर हमला बोल दिया। खूनी गृहयुद्ध का सिलसिला तीन साल तक तो प्रचण्ड रूप में चलता रहा, लेकिन उसके बाद भी काफी समय तक जगह-जगह क्रान्तिविरोधी ताकतें सिर उठाती रहीं। लेकिन बोल्शेविकों के नेतृत्व में अत्यन्त कुशलता से रणनीतिक पैंतरों का इस्तेमाल करते हुए समाजवादी सत्ता ने साम्राज्यवादियों और देशी प्रतिक्रियावादियों के हर षड्यंत्र को शिकस्त दी।

नवोदित समाजवादी राज्य को साँस लेने और जड़ें मजबूत करने का थोड़ा मौका मिले इसके लिए नई आर्थिक नीति (नेप) के तहत सम्पत्तिशाली वर्गों, खासकर गाँव के धनिकों को कुछ समय के लिए कुछ छूटें दी गयीं। इस बीच प्रतिक्रियावादियों की गोलियों का शिकार बनने के बाद से अस्वस्थता के बावजूद लगातार काम में जुटे लेनिन की मृत्यु से पार्टी को भारी झटका लगा लेकिन क्रान्ति की धारा रुकी नहीं। लाखों की संख्या में मेहनतकश और युवा पार्टी की कतारों में शामिल हुए और भितरघातियों तथा दुलमुल तत्वों का मुकाबला करते हुए बोल्शेविक पार्टी सर्वहारा राज्य को मजबूत बनाने में लगी रही। स्तालिन के नेतृत्व में समाजवादी निर्माण का काम आगे बढ़ता रहा।

दुनिया के इतिहास में पहली बार मार्क्सवाद की किताबों में लिखे सिद्धान्त ठोस सच्चाई बनकर जमीन पर उतरे। उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व का खात्मा कर दिया गया। पर विभिन्न रूपों में असमानताएँ अभी भी मौजूद थीं। जैसा कि लेनिन ने इंगित किया था, छोटे पैमाने के निजी उत्पादन से और निम्न पूँजीवादी परिवेश में लगातार पैदा होने वाले नये पूँजीवादी तत्वों से, समाज में अब भी मौजूद बुर्जुआ अधिकारों से, अपने खोये हुए स्वर्ग की प्राप्ति के लिए पूरा जोर लगा रहे सत्ताच्युत शोषकों से और साम्राज्यवादी घेरेबन्दी और घुसपैठ के कारण पूँजीवादी पुनर्स्थापना का खतरा बना हुआ था। इन समस्याओं से जूझते हुए पहली सर्वहारा सत्ता को समाजवादी संक्रमण की दीर्घकालिक अवधि से गुजरते हुए कम्युनिज्म की ओर यात्रा करनी थी। नवोदित समाजवादी सत्ता को फासीवाद के खतरे का मुकाबला करते हुए समाजवादी संक्रमण के इन गहन गम्भीर प्रश्नों से जूझना था। निश्चय ही इसमें कुछ त्रुटियाँ हुईं जिनमें मूल और मुख्य त्रुटि यह थी कि समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष की प्रकृति और उसके संचालन के तौर-तरीकों को समझ पाने में कुछ समय तक सोवियत संघ का नेतृत्व विफल रहा। लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध में फासीवाद को परास्त करने के बाद स्तालिन ने इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाये। समाजवादी समाज में किस प्रकार अतिरिक्त मूल्य का उत्पादन और विनिमय विभिन्न रूपों में जारी रहता है और माल उत्पादन की अर्थव्यवस्था मौजूद रहती है इसका उन्होंने स्पष्ट उल्लेख किया था और इन समस्याओं पर चिन्तन की शुरुआत कर चुके थे। लेकिन यह प्रक्रिया आगे बढ़ती इसके पहले ही स्तालिन की मृत्यु हो गयी।

चौथे-पाँचवे दशक के वैचारिक अवरोध और साम्राज्यवाद की सम्पूर्ण आर्थिक-राजनीतिक-सामरिक शक्ति के विरुद्ध संघर्ष में पूरी पार्टी के सन्नद्ध रहने का लाभ उठाकर सोवियत संघ के भीतर जिन नये बुर्जुआ तत्वों ने राज्य, पार्टी और सामाजिक संरचना के भीतर अपने आधारों को पर्याप्त मजबूत बना लिया था, वे स्तालिन की मृत्यु के बाद खुलकर सामने आ गये और सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना करने में कामयाब हो गये। सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व समाजवादी मुखौटे वाले नये बुर्जुआ अधिनायकत्व में तब्दील हो गया। उत्पादन के साधनों पर समाजवादी स्वामित्व का वैधिक विभ्रम बना हुआ

पेज 6 पर जारी

देश में भूमण्डलीकरण का गुणगान, विदेश में इसकी बुराई!

यह दोगलापन लूट के हिस्से में सौदेबाजी के लिए भारतीय शासकों का पैंतरा है

'भूमण्डलीकरण ने व्यक्तिगत और क्षेत्रीय आय की असमानता दूर नहीं की है। अमीरों और गरीबों के बीच खाई बढ़ी है।' यह बात नई आर्थिक नीति विरोधी किसी शख्स ने नहीं, बल्कि भारत में भूमण्डलीकरण की नीतियों के प्रमुख ध्वजवाहक डॉ. मनमोहन सिंह ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अपने भाषण में कही है।

ऐसा नहीं है कि यह बात सोच-समझकर कहने के बाद प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने घोर जन विरोधी आर्थिक नीतियों पर लगाम लगा दी हो। इसके बजाय वह भारत में इन नीतियों के पहले से अधिक मुखर प्रवक्ता बन गये हैं। और उनके नेतृत्व में भूमण्डलीकरण का दैत्य ज्यादा कुशलता से तबाही मचा रहा है। तो फिर यह माजरा क्या है कि प्रधानमंत्री एक मुँह से दो बातें कर रहे हैं। आम जन में एक मुँह से दो बातें करने वाले को दोगला और बेईमान कह दिया जाता है, यह बात हमारे विद्वान अर्थशास्त्री डॉ. मनमोहन सिंह को पता न हो, ऐसा नहीं हो सकता।

दरअसल पूँजीवाद के संकटों से पार पाने के लिए तीसरी दुनिया के शासक वर्ग एड़ी-चोटी का जोर लगाये हुए हैं। पतनशील और जनद्रोही पूँजीवाद की रक्षा में तैनात ये पहरेदार शासक अन्याय और असत्य का दामन थामे निरन्तर जनविमुख होते जा रहे हैं। ऐसे में कोई आश्चर्य नहीं कि तीसरी दुनिया के देशों की सत्ताओं और सत्ताधीशों को कई चेहरे लगाकर, अपनी जुबान की ऐसी-तैसी कर गिरगिट की तरह रंग बदलना पड़ रहा है। छल-बल-धूर्तता का यह चरम अमेरिकी शासक वर्ग में देखा जा सकता है, जो तीसरी दुनिया के पूँजीपति वर्ग का आदरणीय वरिष्ठतम भ्राता है।

बहरहाल, "भद्रपुरुष" डॉ. मनमोहन सिंह अब केवल एक अर्थशास्त्री नहीं, बल्कि सरकार के मुखिया हैं। इसीलिए वह जब देश में होते हैं तो भूमण्डलीकरण की नीतियों की तारीफ करते नहीं अघाते, पर जब विदेश में होते हैं तो भूमण्डलीकरण की आलोचना भी करते हैं। तीसरी दुनिया के एक प्रमुख देश के प्रधानमंत्री को यही करना चाहिए। आज साम्राज्यवाद के जूनियर पार्टनर की भूमिका निभा रहे देशी पूँजीपति वर्ग का सच्चा सेवक वही हो सकता है जो साम्राज्यवाद से और अधिक रियायतों के लिए दबाव बनाये। साम्राज्यवादियों के आपसी अन्तरविरोधों का फायदा उठाये। उनसे कहे कि भूमण्डलीकरण के कारण तबाही हो जायेगी, इसलिए हमें ज्यादा रियायतें दो। उनको पूँजीवाद के पालतू टुकड़खोर एन.जी.ओ. वालों की भाषा में यह समझाये कि भूमण्डलीकरण को मानवीय चेहरा प्रदान करना जरूरी है।

वहीं दूसरी ओर, देश की जनता

पेज 12 पर जारी

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

जीने के लिए मौत से लड़ते लोग

12 फुट ऊँची दीवारों के ऊपर तीन फुट कंटीले तारों से घिरी 3-4 बीघा जमीन के बीचों-बीच बनी इस भुतहा इमारत को देख कर किसी डरावनी फिल्म का रोमांच होता है। चौंकिये नहीं। यह किसी हॉरर फिल्म का प्लॉट नहीं। अगर लगातार कन्टेनरों की आवाजाही और हर शाम इसके कंपाउंड से पुरबिया गानों की तान हवा में न बिखरे तो यह सचमुच ही किसी रहस्यमयी कथा का प्लॉट बन जाता।

यह इमारत सरवली एमआईडीसी में है जो कि कल्याण से भिवंडी जाने वाले मुख्य मार्ग गोवे नाका से आधा कि.मी. उत्तर में उल्हास नदी के किनारे स्थित है। इस परिसर में मेटलप्लास और नीको की दो कम्पनियाँ स्थित हैं।

रोजगार की तलाश में बहुत भटकने के बाद मुझे इन्हीं में से एक कम्पनी 'नीको' में वाचमैन का काम मिला। पहले दिन रात आठ बजे जब ड्यूटी पर पहुँचा तो मेरे सुपरवाइजर ने मुझे कम्पनी के पिछवाड़े वाले हिस्से में रखवाली करने को कहा और हिदायत दी कि प्रति घंटा मैं सीटी बजाते हुए डंडा पीटते रहूँ। घुप्प अँधेरे में भंगारों (स्क्रैप) के बीच ठोकर खाता हुआ मैं पिछवाड़े की ओर पहुँचा और लोहे की सीढ़ी कुर्सी पर बोरा बिछाकर बैठ गया। खामोश अँधेरे में मच्छरों से युद्ध लड़ते हुए अपने हालात पर सोच-विचार कर रहा था कि अचानक धातु के टुकड़ों की खनखनाहट से मेरा रोआँ-रोआँ सिहर उठा। भय के संस्कार और अब तक की देखी तमाम डरावनी फिल्मों का दृश्य मेरे जहन में घूम गया। इससे उबरने की अभी कोशिश ही कर रहा था कि अँधेरे में एक झूमती लड़खड़ाती मानव आकृति बढ़ती चली आ रही थी। जब तक कि मेरे हाथ की सीटी मुँह तक पहुँचती, मेरे कानों में लटपटाती जबान से पुरबिया धुन 'रेलिया बैरन पिया को लिए जाये रे...' पड़ी, जिसने मुझे वास्तविकता की जमीन पर पटक दिया। मैंने अपने थरथराते वजूद को धिक्कारते हुए मन ही मन अपने आप से कहा, 'अबे, यह तो कोई मजदूर है। अनायास ही मुझे हँसी आ गयी, वैसे ही जैसे किसी दुर्घटना से बच निकलने के बाद आती है। हँसी की आवाज सुनकर वह आकृति जोर से दहाड़ उठी 'कौन है बे!' फिर मुझे एक निश्चित जगह पर बैठे देखकर बोला – "अरे अन्धवै में बैठे हैं का साहेब। रूकिये मैं अंजोर करता हूँ।" यह कहकर उसने बल्ब जला दिया।

उजाला होते ही इस कबाड़खाने में गिरस्थियाँ रौशन हो उठीं। गिरस्थी भी क्या? जंग खाये कनस्तरों प्लास्टिक की टिपों (कंडाल), लकड़ी के फट्टों पर बिछायी बोरियों का बिस्तर, यहाँ-वहाँ कालिख लगे लुढ़के बरतनों और ईंटों के चुने हुए धुंआये चूल्हे। खुले आसमान के नीचे पसरी बंजारे जीवन की व्यवस्था। इसके बाद दृश्य पर दृश्य खुलते चले गये। झूमते-लड़खड़ाते एक-एक; दो-दो करके करीब पचास मजदूरों का आना और अलग-अलग गृहस्थियों का फ्लैश में चमकना। घण्टे भर बाद यह दृश्य पूरा हुआ, तब जाकर पता चला कि कम्पनी की चहारदीवारी से लगायत पूरे मलंगों (गरीब मजदूरों) की बस्ती बसी है।

तो, यह है मुम्बई में कमाने आने वालों की दुनिया! और मुलुक में छोड़ आये परिजनों के पलते सपनों का सच।

इन दोनों कम्पनियों में करीब 150 स्त्री-पुरुष मजदूर काम मरते हैं। जिसमें स्त्री कामगारों की संख्या अधिक है। पुरुष कामगार ज्यादातर पूर्वी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर व बस्ती जिले के सीमावर्ती इलाकों के हैं। स्त्री कामगारों में ज्यादातर महाराष्ट्रियन महिलाएँ हैं। यह कामगार भंगार छँटाई का काम करते हैं। बेहद नीरस और धूलगर्द और जहरीले रसायनों में लिपेट धातु के टुकड़ों को धात्विक गुणवत्ता के हिसाब से अलग-अलग ढेरियों में जमा करना पड़ता है, तथा पुरुष कामगार धातु छँटाई के साथ-साथ 50 से 100 किग्रा. की बोरियों को तौलना और उसकी लदाई का काम करते हैं। इनकी इतनी मश्क्कत का मोल है 8 घंटे का 80 रु. और महिला मजदूरों का 60 रु.। काम के दौरान सुविधा के नाम पर 100 महिला कामगारों के लिए एक संडासघर है, जिसका इस्तेमाल पुरुष मजदूर भी करते हैं। काम के दौरान चोट लगने पर बस डिटॉल की इनायत की जाती है। पुरुष मजदूरों से जबरिया ओवरटाइम कराया जाता है क्योंकि रहने की सुविधा के नाम पर मालिकों ने कम्पनी परिसर में झुग्गी बनाने की सुविधा दे रखी है। यह सुविधा मालिकों को मजदूरों से बँधुआ गुलामी करवाने का मौका देती है। इसीलिए पुरुष मजदूरों के काम के घंटों की कोई सीमा नहीं है।

इस कम्पनी में बिखरी हुई धूल सामान्य धूल नहीं है। हर रात चोरी-छुपे यहाँ विदेशों से लाये हुए इलेक्ट्रॉनिक कचरों को जलाया जाता है। अगर जलाने वाले मजदूर हवा के रुख के विपरीत न रहे तो उनका दम घुट सकता है। इसके धुएँ से फेफड़े जाम हो जाते हैं, सिर दर्द, मितली, भूख न लगना सामान्य लक्षण हैं।

इन कम्पनियों में काम करने वाले मजदूरों की रहस्यमय बीमारियों से मौत होती रहती है। मजदूरों की पिछड़ी चेतना इन मौतों को 'ऊपरी फेर' समझती है। नवम्बर 2005 में एक बहुत ही जिन्दादिल मजदूर की सप्ताह भर बुखार आने से मौत हो गयी। इस नौजवान के कमर से नीचे भयानक दर्द हो रहा था। दूसरी मौत मई 2006 में गाँव से आकर अभी सप्ताह भर ही काम किये हुए मजदूर की हुई। प्रबन्धन ने आनन-फानन में उसका पोस्टमार्टम करा कर लाश को गाँव भिजवा दिया। डॉक्टरों ने पोस्टमार्टम रिपोर्ट में इस मजदूर की मौत को 'पीलिया' होना बताया। क्या पीलिया के लक्षण 24 घंटे में मरीज की जान ले लेते हैं? और क्या वजह थी कि एक मजदूर की मौत पर कोई कम्पनी तीन दिनों तक बन्द रहे!

इस कम्पनी के प्रबन्धन का व्यवहार अजीब और रहस्यपूर्ण लगता है। इनकी चौकसी और चौकन्नापन बार-बार गाजियाबाद की भंगार कंम्पनी में हुई दुर्घटना की याद दिलाता है। इस चौकसी की वजह मजदूर यह समझते हैं कि इन दोनों कम्पनियों में चूँकि एक प्राइवेट है तथा दूसरी लिमिटेड है और रात को लिमिटेड कम्पनी का कुछ माल प्राइवेट कम्पनी में लाया जाता है, जिसे मजदूर कुछ कानूनी गड़बड़झाला होने की बात महसूस करते हैं।

इन कम्पनियों में जिस तरह से इलेक्ट्रॉनिक कचरों की तोड़फोड़ मजदूरों द्वारा की जाती है तथा आधी रात को खुफिया तरीके से जलवाया जाता है, उससे कभी भी कोई बड़ा हादसा हो सकता है। पाठक दो वर्ष पहले गाजियाबाद की स्क्रैप कम्पनी का हादसा नहीं भूले होंगे जिसने छह मजदूरों की जिन्दगी लील ली थी।

— एक मजदूर, मुम्बई

गुजरात में फासिस्टों की काली करतूतें आज भी जारी हैं

पिछले दिनों राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग ने गुजरात में शरणार्थी शिविरों का दौरा करने के बाद वहाँ की स्थिति का जो बयान किया, उसके अनुसार हजारों मुस्लिम परिवार अमानवीय स्थितियों में रहने को मजबूर हैं। यह साबित करता है कि मोदी सरकार के नेतृत्व में हिन्दू फासिस्टों द्वारा किये सामूहिक नरसंहार के साढ़े चार वर्ष बीत जाने के बाद आज भी फासिस्टों की काली करतूतें जारी हैं।

इन राहत शिविरों के बारे में मोदी सरकार का कुतर्क है कि इनमें लोग अपनी मर्जी से रह रहे हैं। इस नायाब कुतर्क का मतलब यही हुआ कि जब शरणार्थी शिविर में लोग घर-बार उजाड़कर मौज कर रहे हैं तो फिर सरकारी सहायता का क्या औचित्य? ऐसा गजब का कुतर्क तो कोई मनोरोगी ही दे सकता है। वैसे भी इतिहास गवाह है फासिस्टों का नेतृत्व बेहद रुग्ण मानसिकता के लोगों ने किया है चाहे वह हिटलर हो या फिर हिटलर की औलादें। गुजरात के राहत शिविरों में पीने का पानी, शौचालय, सड़क, बिजली, स्कूल और प्राथमिक स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सुविधाएँ तक उपलब्ध नहीं हैं। ये परिवार रोजगार के लिए ठोकरें खाने को मजबूर हैं। केन्द्र सरकार द्वारा मुआवजे राहत की मद में दिये करीब उन्नीस करोड़ रुपये को गुजरात सरकार ने बिना खर्च किये लौटा दिया, यह बात भी आयोग कहता है। शिविरों में रह रहे मुस्लिम परिवार वापस अपने घरों पर वापस लौटने से आज भी डर रहे हैं।

गुजरात के ये हालात बताते हैं कि नागरिकों को बिना भेदभव के पूर्ण सुरक्षा देने का, लोकतांत्रिक सरकार होने का दावा कितना झूठा और बेइमानी भरा है। इस सब के बावजूद पिछले दिनों भारत के गृहमंत्री शिवराज पाटिल ने मोदी सरकार की सुशासन के लिए पीठ थपथपाई है। यह स्पष्ट करता है कि सरकार चला रही कांग्रेस को मोदी सरकार की फासिस्ट कारुजारियों से कोई गुरेज नहीं है, यदि वह देशी-विदेशी पूँजीपतियों की बखूबी सेवा कर रही हो। देश-विदेशी मुनाफाखोरों के प्रति अपनी स्वामिभक्ति को मोदी ने सिद्ध कर ही दिया है। राष्ट्रवाद और राष्ट्रभक्ति का राग अलापने वालों को न देशी लूट से और न ही विदेशी लूट से परहेज है। कांग्रेस और भाजपा के बीच लड़ाई अपने-अपने चुनावी कार्डों को लेकर है।

आगामी चुनावों के मद्देनजर चुनावबाजों ने अपने कार्ड बाहर निकालकर अभी से माहौल बनाना शुरूकर दिया है। भाजपा एक बार फिर हिन्दू कार्ड खेलने की तैयारी कर रही है। यह और बात है कि अयोध्या मसले की तरह फिर से धार्मिक भावनाओं को उभाड़ने में वह बार-बार असफल हो रही है। उत्तर प्रदेश में मोदी ब्रांड विनय कटियार की पंचकोसी परिक्रमा हो या वन्देमातरम का राग। सब पटाखे फुसफसा रहे हैं। इसलिए फिर किसी नये षडयंत्र, अगले नरसंहार की तैयारी न हो रही हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

— एल. प्रसाद

जाति-धरम के झगड़े छोड़ो
सही लड़ाई से नाता जोड़ो!

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और जिम्मेदारियाँ

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी- अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ
दिल्ली सम्पर्क : 43-बी, श्रमिक कुंज, सेक्टर-66 नोएडा
ईमेल : bigul@rediffmail.com

मूल्यः एक प्रति–रु. 3/- वार्षिक–रु. 40.00 (डाक खर्च सहित)

बिगुल

'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध :

1. डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
2. जनचेतना स्टाल, काफी हाउस बिल्डिंग, हजरतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे तक)
3. जाफरा बाजार, गोरखपुर-273001
4. 16/6, बाघम्बरी हाउसिंग स्कीम अल्लापुर, इलाहाबाद
5. जनचेतना सचल स्टाल (ठेला) चौड़ा मोड़, नोएडा (शाम 5 से 8)

मेहनतकश साथियों के लिए जरूरी कुछ पुस्तकें

कम्युनिस्ट पार्टी का संगठन और उसका ढांचा –लेनिन 5/-
मकड़ा और मक्खी –विल्हेल्म लीब्कनेख्त 3/-
ट्रेड यूनियन काम के जनवादी तरीके –सर्जी रोस्तोवस्की 3/-
अनवश्वर है सर्वहारा संघर्षों की अग्निशिखाएं 10/-
समाजवाद की समस्याएं, पूँजीवादी पुनर्स्थापना और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति 12/-
क्यों माओवाद? 10/-
मई दिवस का इतिहास 5/-
अक्टूबर क्रान्ति की मशाल 12/-
पेरिस कम्यून की अमर कहानी 10/-
पार्टी कार्य के बारे में 15/-
जनता के बीच पार्टी का काम 30/-

बिगुल विक्रेता साथी से माँगें या इस पते पर 17 रु. रजिस्ट्री शुल्क जोड़कर मनीआर्डर भेजें: जनचेतना, डी-68, निराला नगर, लखनऊ।

भगतसिंह और क्रान्तिकारियों के विचारों पर पाबन्दी लगाने की एक और पुलिसिया कोशिश

बिगुल संवाददाता

शहीदेआजम भगतसिंह के विचारों के प्रसार की अब कोई जरूरत नहीं रह गयी है। यदि आप ऐसा करते हैं तो हिन्दुस्तान की पुलिस आपकी इन खतरनाक गतिविधियों के खिलाफ "आवश्यक कार्रवाई" कर सकती है।

जी हाँ, यही महाराष्ट्र की चन्द्रपुर पुलिस का मानना है। उसने 'दानिश बुक्स' की सुनीता नारायण पर 'अनलॉफुल एक्टिविटीज़ प्रिवेंशन एक्ट' के तहत इसलिए मुकदमा दर्ज कर दिया क्योंकि उनके किताबों के स्टॉल पर लेनिन, चे ग्वेरा, भगतसिंह की किताबें भी थीं। सुनीता अम्बेडकर के बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के उपलक्ष्य में चन्द्रपुर में आयोजित मेले में भाग लेने गयी थीं। हालाँकि, सुनीता का कहना है कि पुलिस द्वारा सन्देह के घेरे में ली गयी कोई भी किताब भारत सरकार या उसकी किसी भी संस्था द्वारा प्रतिबन्धित नहीं है।

सुनीता 15-17 अक्टूबर के बीच लगातार पुलिस वालों से घिरी रहीं। 15 अक्टूबर को शाम 4 से 5 बजे के बीच भारी तादाद में पुलिस ने आकर पूरे स्टॉल को खंगालते हुए जिस भी किताब पर क्रान्ति, विद्रोह, मार्क्स, लेनिन, माओ, नारी स्वतंत्रता, भगतसिंह या साम्राज्यवाद जैसे शब्द दिखे, उन्हें चुना और 13 किताबों की 41 प्रतियाँ अपने कब्जे में ले लीं। 15 से 17 अक्टूबर के बीच विभिन्न चरणों में सुनीता से कई-कई घण्टे गहन पूछ-ताछ की गयी। एकदम निजी सवालों से लेकर इधर-उधर की बातें करते हुए पुलिस लगातार यह कोशिश करती रही कि सुनीता को माओवादी सिद्ध किया जा सके। करीब 10 मोटरसाइकिलें, चार सुमो जीप, दो बड़ी गाड़ियों के काफिले में पूछ-ताछ के लिए ले जायी गयी सुनीता एकदम हतप्रभ थीं कि एक "लोकतान्त्रिक देश" में प्रगतिशील साहित्य बेचना उनके लिए गुनाह कैसे बन गया। बहरहाल, देश भर से इसके विरोध में अलग-अलग हलकों से उठी आवाज के दबाव में उन्हें छोड़ तो दिया गया लेकिन उन पर "कलम 18 बेकायदेशीर कृत्ये (प्रतिबन्ध) सुधारीत अधिनियम 2004" के तहत मुकदमा दर्ज कर उनसे कहा गया कि चन्द्रपुर पुलिस जब-जहाँ कहेगी, उन्हें हाजिर होना होगा।

कोई भी प्रतिबन्धित किताब न होने के बावजूद किताबों के स्टॉल पर छापा मारने, किताबें उठा ले जाने, लम्बी पूछ-ताछ में माओवादी सिद्ध करने पर आमादा पुलिस की हरकत बताती है कि बन्दूक के दम पर विचारों का गला घोंट देने की कोशिशें जारी हैं। बावजूद इसके कि इतिहास ने कई बार जालिम शासकों के मुँह पर तमाचा मार कर इस बात को सिखाया है कि बल प्रयोग से विचारों को कुचला नहीं जा सकता है। लगता है तमाम अन्यायी शासकों की ही तरह भारतीय शासक वर्ग भी दमन का पाटा चलाते हुए इतिहास के इस सबक को ताक पर रख देना चाहता है।

सत्ता मद में चूर शासक वर्ग के ये नुमाइन्दे यह भूल रहे हैं कि इनकी ओछी करतूतें जनवाद के इनके मुखौटे को तार-तार कर रही हैं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को बूटों तले रौंदने वाले कुकृत्यों से ये अपने प्रति जनमानस में बसी घृणा में इजाफा ही कर रहे हैं। इस सबके बीच बार-बार सबसे बड़े लोकतंत्र का ढिंढोरा पीटना और अधिक हास्यास्पद होता जा रहा है। कैसा भद्दा मजाक है कि एक ओर सरकार भगतसिंह का जन्मशताब्दी वर्ष मनाने के लिए करोड़ों रुपये का बजट बनाती है और वहीं दूसरी ओर वह अपने नुमाइन्दों, भारतीय न्यायपालिका के एक पूर्व न्यायाधीश के शब्दों में कहें तो, "गुण्डों के सबसे संगठित गिरोह" द्वारा भगतसिंह की किताबें उठवाती है। एक ओर, पूरी दुनिया के सर्वहारा वर्ग के महान नेताओं मार्क्स, लेनिन, माओ के विचारों को मजबूरन ही सही सरकारी पुस्तकालयों, विश्वविद्यालयों में जगह देनी पड़ी है, वहीं दूसरी ओर इन महान नेताओं के विचारों पर अमल करने वालों द्वारा विचारों के प्रसार को आन्तरिक सुरक्षा के लिए खतरा बताया जाता रहा है।

सत्ताधारियों को अपना यह दोगलापन छोड़कर खुलकर सामने आना चाहिए। साथ ही उनके चारण-भाट बने बुर्जुआ मीडिया और कलमघसीटों को भी। दर्शन, कला, साहित्य, संस्कृति में जिन विचारों को ये खतरनाक और देश की सुरक्षा के लिए खतरा बताते हैं, उन सब किताबों, नाटकों, फिल्मों को प्रतिबन्धित कर दिया जाय तो वही कचड़ा चारों ओर पसरा नजर आयेगा, जो इनके दिमागों में भरा है। अश्लील, घिनौना, घृणास्पद साहित्य जो लगातार ही इनके राज में फल-फूल रहा है, सिनेमा और टीवी की विचारविहीन मानवद्रोही संस्कृति, जो पूरी मानवता को मनोरंजन और सूचना के नाम पर जहर परोस रही है।

विचार और साहित्य पर इनकी कसौटी लागू की जाये तो तिलक, माखनलाल चतुर्वेदी, गणेशशंकर विद्यार्थी, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन से लेकर प्रेमचंद, निराला, मुक्तिबोध आदि आदि की बहुत बड़ी सूची होगी, जिन्हें कटघरे में खड़ा करना पड़ेगा। इनका जुर्म होगा कि ये अन्याय के खिलाफ विद्रोह की शिक्षा देते हैं। शासक वर्गों को चाहिए कि वे अपने पौरुष का परिचय देते हुए इस विशाल साहित्य के भण्डार को 'अनलॉफुल एक्टिविटीज़ प्रिवेंशन एक्ट' के तहत नष्ट कर दें।

आजादी से पहले जिन लेखकों, साहित्यकारों, संस्कृतिकर्मियों को अंग्रेज साम्राज्यवादी अपने लिए खतरनाक समझते थे, ऐसा नहीं है कि आज के शासक वर्गों के लिए वे खतरनाक नहीं हैं। तथाकथित आजादी मिलने के बाद उनके विचारों को आगे बढ़ाने वाले लोगों को पहले रूस और चीन का एजेण्ट या इसी तरह के अनर्गल विशेषणों से नवाजा जाता रहा और अब उन्हें "नक्सलवादी" और "माओवादी" कहकर आतंकवादियों की श्रेणी में डाल दिया जाता है।

आज भूख, गरीबी, अन्याय, जुल्म, अत्याचार-अनाचार के खिलाफ उठने वाली हर आवाज को शासक वर्ग द्वारा नक्सलवाद या माओवाद कहकर बदनाम किया जाता है। बुर्जुआ मीडिया ने इन शब्दों को स्थापित करने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई है। खुद सत्ताधारियों की दिलअजीज पतुरिया की भूमिका निभा रहे इस मीडिया ने नक्सलवाद या माओवाद का ऐसा हौव्वा खड़ा किया है कि इन शब्दों से भय व आतंक की बू आने लगे। एक झूठ को सौ बार बोलकर उसे सच बनाने वाले इन गोएबेल्सों से कोई यह पूछे कि उनकी नक्सलवाद-माओवाद की इस परिभाषा के अनुसार तो भारत के सभी क्रान्तिकारी खूँखार आतंकवादी हो जायेंगे, आजादी की लड़ाई से लेकर अब तक।

अब जरा नक्सलवादी साहित्य की बात की जाये तो तमाम लोगों को इन्हें जेल की सींखचों के पीछे धकेलना पड़ेगा। नक्सलवाद अपने-आप में न तो कोई वाद है, न किसी दार्शनिक शब्दकोश का यह शब्द है। यह भारतीय सत्ताधारियों और सत्ता के चौथे खम्भे मीडिया द्वारा पैदा किया शब्द है जो आज के क्रान्तिकारियों और विशेष तौर पर कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के लिए प्रयोग किया जाता है। मजदूर वर्ग को डराने-धमकाने और भय का व्यापार करने में इस शब्द का सत्ताधारी भरपूर इस्तेमाल करते हैं। लाख कोशिशों के बावजूद इस शब्द से मजदूर वर्ग भयभीत होने के बजाय अधिक नजदीकी महसूस करता है और शासक वर्ग के हिस्से ही भयाक्रान्त हो उठे हैं। बहरहाल, इसी नक्सलवाद पर न जाने कितने बुद्धिजीवियों ने लिखा है और अनेक शोध हुए हैं।

"नक्सलवादी साहित्य को नष्ट कर देने के लिए कृत संकल्प" भारतीय पुलिस को प्रख्यात पत्रकार और लेखक मोहन राम की नक्सलवाद पर लिखी तीन किताबों को जब्त कर लेना चाहिए। माओवादी साहित्य से नफरत करने वाली पुलिस को माओ के नेतृत्व में हुई चीनी क्रान्ति पर लिखी प्रो. मनोरंजन मोहंती की किताब, और ऐसी ही अनेकानेक भारतीय लेखकों की किताबों को जब्त कर लेना चाहिए। क्या हुक्मराम ऐसा करेंगे। क्या वे विश्वविद्यालयों में सैन्य विज्ञान की कक्षाओं में आम तौर पर पढ़ाये जाने वाले माओ त्से-तुङ के विचारों पर प्रतिबन्ध लगायेंगे? क्या वे नेहरू मेमोरियल पुस्तकालय से लेकर देश के बड़े-बड़े पुस्तकालयों, विश्वविद्यालयों में विभिन्न राजनीतिशास्त्र के पाठ्यक्रमों, शोधों पर इसलिए पुलिसिया ताला जड़ सकते हैं कि वहाँ पर मार्क्स, लेनिन, माओ और दुनिया के महान क्रान्तिकारियों के विचार भी हैं।

जिस विचार ने पिछली सदी को उलट-पुलट कर रख दिया हो, इतिहास में पहली बार मानव द्वारा मानव के शोषण और श्रम की लूट खत्म कर नया समाज बनाने के अनूठे प्रयोग जिस विचार पर हुए हों, जिस विचार ने दर्शन, कला, साहित्य, संस्कृति और जीवन के हर क्षेत्र में यह सिद्ध कर दिया हो कि केवल और केवल यही आज का सही विचार, सही दर्शन है – उसी विचारधारा पर आज का भारतीय शासक वर्ग वैचारिक हमला, सीधा आक्रमण करने के बजाय जबान पर ताला लगाने, विचारों पर पुलिसिया पहरा बैठाने के नापाक मंसूबे बाँध रहा है। इससे यही सिद्ध होता है कि पूँजीवादी शासक वर्ग अब इतिहास को आगे नहीं, बल्कि पीछे धकेलने की कोशिश कर रहा है। वह मानवता को आगे ले जाने का नहीं, बल्कि उसका रास्ता रोके खड़ा है।

मजदूरों को आत्महत्या की ओर धकेलती कपड़ा उद्योग की तबाही

मुम्बई। हमारे देश के सत्तापरस्त अर्थशास्त्री भले ही आँकड़ों की बाजीगरी से देश के आर्थिक विकास के बड़े-बड़े दावे करें लेकिन सच्चाई यह है कि पिछले 16 सालों से देश में जिस रोजगार विहीन विकास के माँडल की नीतियों पर अमल हो रहा है उससे देश की मेहनतकश जनता लगातार तबाह-बर्बाद हो रही है। इसकी प्रगति का सबूत देश के विभिन्न हिस्सों में मजदूरों-किसानों की बढ़ती आत्महत्याएँ हैं।

मीडिया द्वारा इन आत्महत्या की खबरों को संवेदनशून्य तरीके से महज आँकड़ों के रूप में अखबारों के कोने-अंतरों में यहाँ-वहाँ चस्पां कर दिया जाता है, ताकि खबरों की नौटंकी में सत्य उजागर करने का पाखंड बना रहे।

पिछले दिनों पावरलूम उद्योग का शहर भिवंडी (जिसे इंडियन मैनचेस्टर का दर्जा हासिल है) के मजदूरों की आत्महत्या की खबर, वह भी सिर्फ पाँच-सात पंक्तियों की, एक राष्ट्रीय हिन्दी दैनिक में महज आँकड़ों के रूप में आयी थी, इस सवाल को दरकिनार करते हुए कि यह आत्महत्याएँ क्यों हो रही हैं। शहर के दक्षिणी इलाके 'कामत घर' में स्थित वडाल देवी तालाब बदहाल मजदूरों का "मुक्ति स्थल" बन चुका है। पिछले छह महीनों में इस तालाब में डूबकर 51 मजदूरों ने आत्महत्या कर ली। इसी प्रकार 35 मजदूरों ने अपनी समस्याओं से निजात के रूप में फाँसी लगा ली और 26 लोगों ने आग लगा कर आत्महत्या कर ली। आग लगाने वालों में सर्वाधिक संख्या महिलाओं की है।

यह मजदूर कपड़ा उद्योग की मंदी से तबाह होकर अन्तिम विकल्प के रूप में आत्महत्या कर रहे हैं। जैसे कि आमतौर से लोग इन आत्महत्याओं का कारण व्यक्तिगत कमियों-कमजोरियों को समझते हैं, वैसे ही सत्तापरस्त अखबार इन मजदूरों की तबाही के लिए विद्युत कटौती को जिम्मेदार मानता है। मगर सच्चाई यह है कि जो मजदूर अपनी जगह-जमीन से उजड़ कर भिवंडी जैसी जगहों में बस कर उजरती गुलामी कर रहे हैं, वह उद्योगों में आयी मन्दी से तबाह हो रहे हैं।

आज उत्पादन की दुनिया जिस भयानक मन्दी की शिकार है उससे भारतीय कपड़ा उद्योग भी अछूता नहीं है। पावरलूम उद्योग केन्द्रों में मजदूरों की बड़ी विकट स्थिति है। इन केन्द्रों में गाँवों से उजड़कर परिवार सहित आये हुए मजदूरों के सामने यहाँ से वापस जाने का कोई विकल्प नहीं बचा है। लिहाजा जैसे-तैसे परिवार चलाने की मजबूरी इन्हें कर्ज के मकड़जाल में फँसा देती है। इसके अलावा वह मजदूर जो बगैर परिवार के यहाँ हैं, उनके रिहायशी इलाके साक्षात नरक है। 10 गुणा 8 फुट की खोलियों में दस-बारह के झुंड में पशुओं की तरह रहना इनकी आर्थिक मजबूरी है। बगैर खिड़की- रोशनदान के कमरे में आबादी का घनत्व हर-हमेशा मजदूरों में टायफाइड और आस-पास गन्दगी भरा परिवेश मलेरिया, चिकनगुनिया का प्रकोप पैदा किये रहता है। यहाँ के बुखारों की प्रकृति भी अजीब है ऐसा लगता है जैसे मजदूरों के शरीर से उनका सारा सत निचोड़ लिया हो। जेब और स्वास्थ्य की तबाही, काम के नीरस दोहराव के साथ ही मनोरंजन के नाम पर उपलब्ध कचड़ा इन्सानी जिन्दगी को और नारकीय बना डालता है।

इस शहर में सैकड़ों ट्रेड-यूनियनें हैं, जिनमें ज्यादातर निष्क्रिय किस्म की हैं। सक्रियता के नाम पर अगर कुछ संगठन सक्रिय हैं तो सिर्फ फिरकापरस्त कामों में या पूँजी की भड़वागिरी करने में। आर्थिक मुश्किलों के चलते इन मजदूरों की मौत पर किसी भी संगठन में कोई हलचल नहीं होती हैं। इनमें हलचल हो भी क्यों? इन यूनियनों का नेतृत्व अर्थवाद की ऐसी नपुंसक सन्तान है, जिसका काम अब सिर्फ तालियाँ पीटना रह गया है। – घनश्याम

वर्ल्ड (या इण्डिया) सोशल फोरम का असली एजेण्डा

वर्ल्ड (या इण्डिया) सोशल फोरम का असली एजेण्डा है मेहनतकशों की वर्ग चेतना को कुन्द करना, जनसंघर्षों को क्रान्तिकारी राह पर जाने से रोकना, उन्हें दिग्भ्रमित और गुमराह करना, उन्हें निठल्ले विमर्शों की चौहद्दियों में कैद कर देना, और भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलने में मदद करने के लिए उसमें व्यवधान पैदा करने वाले और शासक वर्ग के दिलों में खौफ़ बैठाने वाले जनसंघर्षों को व्यवस्था में समाहित और समायोजित कर लेना। यानी, इसी नवउदारवादी पूँजीवाद के वर्चस्व को कायम करना।

इस सोशल फोरम का उद्देश्य भूमण्डलीकरण का विरोध करते हुए कोई विकल्प प्रस्तुत करना नहीं है बल्कि भूमण्डलीकरण के चेहरे को "मानवीय" बनाना है, साम्राज्यवाद-पूँजीवाद विरोधी जनसंघर्षों को एक सूत्र में पिरोने की बजाय उन्हें खण्ड-खण्ड में बाँटना है, जनता की मुखर होती वर्ग चेतना को कुन्द करना है, उसका विराजनीतिकरण करना है और वैकल्पिक कार्यक्रम देने के नाम पर संघर्ष के प्रश्न को अकर्मक, ठलुआ और निठल्ले विमर्शों की चौहद्दी में कैद करके निराशा और विकल्पहीनता की माहौल तैयार करना है। इसे साम्राज्यवाद ने एक 'सेफ्टी वॉल्व मैकेनिज्म' के तौर पर गठित किया है। मूलतः इसका काम विश्व व्यापार संगठन, विश्व बैंक और अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय एजेंसियों के एक पूरक की भूमिका निभाना है। आश्चर्य की बात नहीं है कि इसके पहले आयोजन से ही साम्राज्यवादी धन से सुधारवादी कार्यवाइयों में लिप्त गैर-सरकारी संगठन ही इसके आधे से अधिक घटक हैं और नीति-निर्धारक निकायों की कमान पूरी तरह उनके हाथों में है। वर्ल्ड सोशल फोरम दरअसल साम्राज्यवाद का नया 'ट्रोजन हॉर्स' है। इसका मूल उद्देश्य भूमण्डलीकरण के लाजिमी नतीजे के तौर पर तीखे होते जा रहे वर्ग-अन्तरविरोधों की आँच पर पानी के छींटे मारना है, विशेषकर एशिया-अफ्रीका-लातिनी अमेरिका के देशों मे फिर से उग्र होते जा रहे वर्ग-संघर्षों की गति को रोकना है और जनसंघर्षों को सुधारवाद के दलदल में डुबो देना है।

दिल्ली में 9-13 नवम्बर तक हुए इण्डिया सोशल फोरम के समय दिशा छात्र संगठन, नौजवान भारत सभा और हण्ड्रेड फ्लावर्स मार्क्सवादी स्टडी सर्किल द्वारा बाँटे गये पर्चे का अंश

महाक्रान्ति 1917

राहुल सांकृत्यायन

लेनिन अब उस समय को निकट देख रहे थे, जब उन्हें पेत्रोग्राद के नजदीक रहकर जनशक्ति का संचालन दृढ़तापूर्वक अपने हाथ में लेना पड़ेगा। हेलसिंगफोर्स पेत्रोग्राद से बहुत दूर था। वहाँ से जल्दी–जल्दी सन्देशों का आना–जाना नहीं हो सकता था। इसलिए, 30 सितम्बर को लेनिन हेलसिंगफोर्स छोड़ कर विबोर्ग पहुँच गये।

1. अन्तिम तैयारियां

विबोर्ग से लेनिन ने पार्टी नेताओं के पास सन्देश भेजते हुए जोर दिया कि विद्रोह की तैयारी में जल्दी करनी चाहिए, क्योंकि अस्थायी सरकार क्रान्ति–विरोधी सेनाओं को औद्योगिक केन्द्रों के पास जमा कर रही थी। वह चाहती थी कि क्रान्तिकारी पलटनों को दोनों राजधानियों से और दूसरे बड़े–बड़े शहरों से हटाकर तथा युद्ध के मोर्चे पर भेज कर क्रान्ति की ताकतों को कमजोर कर दे। लेनिन ने यह भी बतलाया कि देश के महत्त्वपूर्ण भागों में पूँजीपति वर्ग क्रान्ति–विरोधी केन्द्र संगठित कर रहे हैं और पेत्रोग्राद को जर्मनों के हाथ में देने का भी षड्यन्त्र रच रहे हैं। वे जर्मन साम्राज्यवादियों से मिलकर क्रान्ति को चूर–चूर करने के लिए रूसी पलटनों को युद्ध के मैदान से हटाने का भी प्रस्ताव कर रहे हैं।

विद्रोह की कला– लेनिन शतरंज के खिलाड़ी की तरह उस समय हरेक मोहरे की स्थिति को बड़े ध्यान से देखते हुए उसकी शक्ति को आँक रहे थे। समाजवादी क्रान्ति में वह उतावलापन दिखाने के लिए तैयार नहीं थे। क्रान्ति की शक्तियों को बढ़ाने के लिए उन्होंने लगातार लेखों और भाषणों द्वारा जनता को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया। धोखे में डालने वाले मेन्शेविकों और समाजवादी–क्रान्तिकारियों के आचरण ने जनता को बतला दिया था कि केवल बोल्शेविक ही उसके सच्चे हितैषी हैं। 1917 ई. के वसन्त में जब पार्टी के कुछ आदमियों ने तुरन्त अस्थायी सरकार को उलट फेंकने के लिए कहा, तो लेनिन ने उन्हें फटकारा, क्योंकि इसका अर्थ यह होता कि अभी तक पूरी तौर से तैयार न हुई जनता पीछे रह जाती और बोल्शेविक आगे बढ़ जाते। बोल्शेविकों के लिए, आगे रहते हुए भी, पीछे आती जनता के साथ अटूट सम्बन्ध रखना क्रान्ति की सफलता के लिए आवश्यक था। लेनिन जानते थे कि जनता बोल्शेविकों के साथ अटूट सम्बन्ध बनाये रखकर आगे बढ़ने को तैयार है। लेनिन समझ गये कि आखिरी घड़ी आ गयी है।

"देरी का अर्थ मृत्यु" – 12 अक्तूबर को लेनिन ने केन्द्रीय कमिटी के नाम एक पत्र में लिखा था :

"संकट की स्थिति अब परिपक्व हो चुकी है। रूसी क्रान्ति का सारा भविष्य दाँव पर है। बोल्शेविक पार्टी की इज्जत कसौटी पर है। समाजवाद के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय कमकर क्रान्ति का सारा भविष्य दाँव पर है।"

अक्तूबर के आरम्भिक दिनों में केन्द्रीय कमिटी, मास्को कमिटी, पेत्रोग्राद कमिटी और पेत्रोग्राद तथा मास्को की सोवियतों के बोल्शेविक सदस्यों के नाम लिखे अपने एक पत्र में लेनिन ने कहा था :

"बोल्शेविकों को सोवियतों की कांग्रेस की प्रतीक्षा करने का कोई अधिकार नहीं है; उन्हें तुरन्त शक्ति हाथ में लेनी चाहिए!.. प्रतीक्षा करना क्रान्ति के प्रति घोर अपराध है।"

अक्तूबर के आरम्भ में हुए पेत्रोग्राद के बोल्शेविकों के सम्मेलन का संचालन लेनिन ने अपने छिपने के स्थान से किया। सम्मेलन के लिए उन्होंने प्रस्तावों के मसौदे बनाये, आगे आने वाली पार्टी कांग्रेस के प्रतिनिधियों के लिए हिदायतें तैयार कीं, और गुप्त अधिवेशन में पढ़ने के लिए एक पत्र लिखा। 20 अक्तूबर (पुराना 7 अक्तूबर) 1917 को लिखे पत्र में लेनिन ने फिर दोहराया :

"हमें यह स्वीकार करना होगा कि यदि करेन्स्की की सरकार निकट भविष्य में सर्वहारा और सैनिकों द्वारा उखाड़ नहीं फेंकी गयी तो क्रान्ति नष्ट हो जायेगी।"

अगले दिन उत्तरी भूभाग की सोवियतों की कांग्रेस के बोल्शेविक–प्रतिनिधियों के लिए उन्होंने जो पत्र लिखा था, उसमें कहा था: "देरी का अर्थ मृत्यु है!"

लेनिन ने मार्क्स और एंगेल्स के सूत्र को दोहराते हुए कहा था कि विद्रोह युद्ध की तरह एक कला है, उसको संयोग और साहस पर छोड़ना मूर्खता है। उसके लिए पूरे कौशल से तैयारी करना तथा संगठन करना और सावधानी के साथ कार्यक्रम की योजना तैयार करना आवश्यक है। विद्रोह की कला के सम्बन्ध में लेनिन ने निम्न नियम पार्टी के सामने उपस्थित किये थे :

"1. विद्रोह के साथ खिलवाड़ मत करो, परन्तु एक बार जब वह आरम्भ हो गया हो तो अच्छी तरह याद रखो कि तुम्हें अन्त तक जाना है।

"2. यह आवश्यक है कि निर्णायक समय पर निर्णायक स्थान में अपनी सेना को अधिक से अधिक परिमाण में जमा किया जाय, नहीं तो शत्रु बेहतर तैयार और संगठित होने के कारण विद्रोहियों को नष्ट कर देगा।

"3. एक बार जब विद्रोह आरम्भ हो जाय तो अत्यन्त दृढ़ निश्चय के साथ काम करना चाहिए, पूरी तौर से और सभी परिस्थितियों में हमें आक्रमणात्मक युद्ध करना चाहिए। 'प्रतिरक्षात्मक युद्ध हथियारबन्द विद्रोह के लिए मृत्यु है।'

"4. शत्रु को अचानक घेरने की, उस समय से फायदा उठाने की जब कि शत्रु की सेनाएँ बिखरी हुई हों, पूरी कोशिश करनी चाहिए।

"5. हमें हर दिन (बल्कि एक नगर की बात होने पर कहा जा सकता है, हर घण्टा) कम से कम कोई छोटी भी सफलता प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए और सभी परिस्थितियों में 'नैतिक बल को ऊँचा' रखना चाहिए।

"हथियारबन्द विद्रोह के सम्बन्ध में सभी क्रान्तिकारियों के तजुर्बों के सार को मार्क्स ने इतिहास में क्रान्तिकारी दाँव–पेंच के सबसे बड़े आचार्य दांतों के शब्दों को दुहराते हुए कहा था : 'साहस, साहस और उससे भी अधिक साहस करे।"

लेनिन ने विद्रोह के लिए निम्न योजना तैयार की थी :

"पेत्रोग्राद को घेरो और उसका बाहर से सम्बन्ध–विच्छेद कर दो; नौसैनिक बेड़े, कमकरों और सेना के सम्मिलित आक्रमण द्वारा पेत्रोग्राद पर अधिकार करो।" इन तीनों मुख्य शक्तियों को इस तरह जोड़ो कि "चाहे जितने मूल्य पर भी निम्न स्थानों पर कब्जा करना और उन्हें हाथ में रखना निश्चित हो जाय : (क) टेलीफोन सम्बन्ध; (ख) सदर तारघर; (ग) रेलवे स्टेशन; और सबसे बढ़कर (घ) पुल।" अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्रवाइयों के लिए "सबसे अच्छे कमकरों, और तरुण कमकरों, सबसे अच्छे नौसैनिकों, और सबसे साहसी व्यक्तियों" के तूफानी दस्ते संगठित करने चाहिए, "जिनका आदर्श–वाक्य हो : 'हम एक–एक कर मर जायेंगे, पर शत्रु आगे नहीं बढ़ पायगा।'" लेनिन ने लिखा था : "रूसी और विश्व क्रान्ति, दोनों की सफलता दो या तीन दिनों की लड़ाई पर निर्भर करती है।"

समाजवादी क्रान्ति ज़िन्दाबाद!

ऊपर की पंक्तियों से मालूम होगा कि लेनिन और बोल्शेविक पार्टी ने क्रान्ति की तैयारी कितनी सावधानी से की थी। कार्यक्रम के साथ क्रान्ति आरम्भ करने का दिन भी निश्चित कर लिया गया था। 20 अक्तूबर को लेनिन ने केन्द्रीय कमिटी के निर्णय के अनुसार विबोर्ग से पेत्रोग्राद के लिए गुप्त रीति से प्रस्थान किया। अगले दिन स्तालिन एवाज कारखाने के एक मजदूर के घर में उनसे मिले। कई घण्टे तक आगे की कार्रवाइयों के बारे में गुरु–शिष्य की बातें होती रहीं। लेनिन की हिदायत के अनुसार स्तालिन ने विद्रोह की एक विस्तृत योजना बनायी। इसे उन्होंने लेनिन के सामने रखा। लेनिन ने उसको पसन्द किया। सूत्रकार लेनिन के अत्यन्त योग्य भाष्यकार स्तालिन थे, इसका स्पष्ट परिचय इस समय मिला।

तीन दिन बाद, 23 अक्तूबर को, पार्टी की केन्द्रीय कमिटी की ऐतिहासिक बैठक हुई। लेनिन ने रिपोर्ट पेश करते हुए जोर देकर कहा कि विद्रोह को तुरन्त आरम्भ करना अत्यावश्यक है। इस रिपोर्ट के बाद लेनिन द्वारा रखे गये प्रस्ताव को केन्द्रीय कमिटी ने मंजूर किया। इसमें कहा गया था कि "सशस्त्र–विद्रोह आज का प्रथम काम है।" 29 अक्तूबर को केन्द्रीय कमिटी की परिवर्धित बैठक ने भी लेनिन की बात का समर्थन किया। इस बैठक में लेनिन दो घण्टे बोले थे। लेनिन के प्रस्ताव पर ही विद्रोह के संचालन के लिए स्तालिन की प्रमुखता में एक पार्टी–केन्द्र कायम करने का निश्चय किया गया। पार्टी–केन्द्र में पेत्रोग्राद–सोवियत की सैनिक–क्रान्तिकारी कमिटी के मुखिया सम्मिलित थे। विद्रोह का प्रायः पूरा संचालन इसी के हाथ में था।

जिस स्थिति में यह महान कदम उठाया जा रहा था, उसमें लेनिन की पैनी दृष्टि ही परिणाम को स्पष्ट रूप से देख सकती थी। यह भारी जोखिम का काम था। लेकिन, जैसा कि स्तालिन ने कहा है :

"लेनिन जोखिम से डरते नहीं थे, क्योंकि वह जानते थे, वह अपनी भविष्य–दर्शी आँखों से देख रहे थे, कि विद्रोह का होना अनिवार्य है, कि विद्रोह विजयी होकर रहेगा, कि रूस का यह विद्रोह साम्राज्यवादी युद्ध को खत्म करने का रास्ता साफ करेगा, कि वह पश्चिमी देशों की थकी–माँदी जनता को उठाकर खड़ा कर देगा, कि वह साम्राज्यवादी युद्ध को गृह युद्ध में परिवर्तित करेगा। वह जानते थे कि विद्रोह सोवियतों के गणराज्य को स्थापित करेगा और सोवियतों का यह गणराज्य सारी दुनिया में क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए एक गढ़ का काम देगा।

"हम जानते हैं, लेनिन की यह क्रान्तिकारी दूरदर्शिता पीछे अद्वितीय सच्चाई साबित हुई।"

केन्द्रीय कमिटी की दोनों बैठकों में कामेनेफ और जिनोवियेफ ने विद्रोह आरम्भ करने के प्रस्ताव के विरुद्ध वोट दिये। उन्होंने मेन्शेविक पत्र "नोवाया जीस्न" के 18 अक्तूबर (पुराने पंचांग) वाले अंक में अपना वक्तव्य प्रकाशित करते हुए कहा कि बोल्शेविक विद्रोह की तैयारी कर रहे हैं। विद्रोह की तैयारी अत्यन्त गुप्त रीति से की जा रही थी। समय से पहले भेद खोल देना भारी विश्वासघात था; यह पीठ में छुरा भोंकना था। कामेनफ, जिनोवियेफ, त्रात्स्की और कुछ अन्य लोगों ने भी सर्वहारा क्रान्ति की योजना को बेकार करने के लिये हर तरह की कोशिश की। त्रात्स्की ने प्रस्ताव रखा था कि सोवियतों की द्वितीय कांग्रेस के आरम्भ होने से पहले विद्रोह आरम्भ नहीं करना चाहिए। लेनिन ने उसका मुँहतोड़ जवाब देते हुए कहा था कि कांग्रेस के अधिवेशन तक प्रतीक्षा करने का मतलब होगा "निरी बेवकूफी या सरासर विश्वासघात!" उन्होंने मांग की कि कामेनफ और जिनोवियेफ को क्रान्ति के साथ गद्दारी करने के अपराध में पार्टी से निकाल बाहर करना चाहिए।

विभीषणों को सफलता नहीं मिली। पार्टी केन्द्र ने विद्रोह की सारी तैयारी बड़ी दृढ़ता के साथ की।

इस समय लेनिन पेत्रोग्राद में विबोर्ग की तरफ छिपे रहकर वहीं से केन्द्रीय कमिटी का लगातार पथ–प्रदर्शन कर रहे थे। एक रात तो वह अस्थायी सरकार के हाथ में पड़ते–पड़ते बचे। वह टहलने के लिए बाहर गये थे, रास्ते में एक पहरेदार ने उन्हें रोक लिया। लेकिन, उसने कागज–पत्रों को देखने के बाद उन्हें छोड़ दिया। उसे पता नहीं लग सका कि यह कौन आदमी है।

बोल्शेविक विद्रोह की तैयारी कर रहे हैं, यह कामेनेफ और जिनोवियेफ की पार्टी से अस्थायी सरकार को मालूम हो ही गया था। वह जानती थी कि विद्रोह के जनरल स्टाफ का सदर–दफ्तर स्मोल्नी में है। उसने 6 नवम्बर को उस पर आक्रमण करने का हुक्म दिया।

भूचाल के दिन

बोल्शेविक निहत्थे नहीं थे। उनके पास जारशाही के सिखलाये हुए, किन्तु अब क्रान्ति के पक्षपाती, सैनिक थे, बख्तरदार मोटरें थीं और कितने ही तोपखाने, रिसाले और जहाजी बेड़े भी थे। अस्थायी सरकार ने बोल्शेविक पत्र "रबोची पुत" (कमकर–पथ) को बन्द करने का हुक्म निकाला। प्रेस और सम्पादकीय कार्यालय के बाहर सशस्त्र सेनायें और हथियारबन्द मोटरें आकर खड़ी हो गयीं। स्तालिन ने उन्हें मार भगाने का हुक्म दिया। लाल गारद और क्रान्तिकारी सैनिकों ने उनके हुक्म का पालन करते हुए क्रान्ति–विरोधियों को वहाँ से मार भगाया। 11 बजे दिन को 'रबोची पुत' निकला। इसमें स्तालिन का लेख 'हमें किस चीज की जरूरत है!' छपा था। इस लेख में अस्थायी सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए जनता से अपील की गयी थी। उसी दिन लाल गारद और क्रान्तिकारी सैनिक फुर्ती से स्मोल्नी के आसपास जमा हो गये।

विद्रोह शुरू हो गया।

लेनिन अब भी अज्ञातवास में थे। वह स्मोल्नी पहुँचने के लिए अधीर हो रहे थे। लेकिन, केन्द्रीय कमिटी की आज्ञा के बिना वह अपने स्थान को नहीं छोड़ सकते थे। शाम के वक्त नादेज्दा क्रुप्स्काया ने "केन्द्रीय कमिटी के सदस्यों को" सम्बोधित लेनिन का एक पत्र केन्द्रीय कमिटी को दिया। उसमें लिखा था :

"स्थिति अत्यन्त संकटमय है... इस समय हर चीज सूत के एक धागे से लटकी हुई है।...ताकत को...25 अक्तूबर (नया 7 नवम्बर) तक करेन्स्की मण्डली के हाथ में किसी हालत में भी नहीं रहने देना चाहिए, किसी भी हालत में नहीं। इस बात का निर्णय बिना चूके आज ही शाम या आज ही रात को करना होगा।

"क्रान्तिकारियों की देर को, जो कि आज विजयी हो सकते हैं (और निश्चय ही आज विजयी होंगे), और जिनके कल बहुत अधिक खोने का जोखिम है, सब कुछ खोने का जोखिम है, इतिहास कभी क्षमा नहीं करेगा।

"कार्रवाई में देरी का अर्थ है– मृत्यु।"

लेनिन केन्द्रीय कमिटी पर तुरन्त कार्रवाई का फैसला करने के लिए जोर डाल रहे थे। उनको डर था कि त्रात्स्की और उसके समर्थक विद्रोह को कहीं स्थगित न कर दें। विद्रोह के लिए जैसे फौलादी हृदय और दिमाग की जरूरत थी, उसकी उम्मीद त्रात्स्की जैसे ढुलमुलयकीनों से नहीं की जा सकती थी। उधर करेन्स्की भी विद्रोह को दबाने के लिए भारी प्रयत्न कर रहा था। उसी रात उसे युद्ध के मोर्चे से विश्वसनीय सेना के पेत्रोग्राद पहुँचने की आशा थी।

लेनिन स्मोल्नी में – 6 नवम्बर की रात को स्तालिन के जोर देने पर केन्द्रीय कमिटी ने लेनिन को स्मोल्नी में बुलाकर उनके हाथ में नेतृत्व की बागडोर देने का निश्चय किया। लेनिन के वहाँ पहुँचने में देर नहीं हुई। स्तालिन ने सारी बातों की पूरी रिपोर्ट देकर बतलाया कि शरद् प्रासाद पर अधिकार करने की योजना कहाँ तक तैयार हो चुकी है। लेनिन अब क्रान्तिकारी विद्रोह के सारथी थे! इतना योग्य सारथी इतिहास में बहुत दुर्लभ है!

7 नवम्बर (पुराने 25 अक्तूबर) को प्रातः काल सारा पेत्रोग्राद विद्रोही सर्वहारा के हाथ में था और टेलीफोन–सम्बन्ध, सदर तारघर, रेडियो–स्टेशन, नेवा नदी के पुल, रेलवे के स्टेशन तथा अधिकांश महत्त्वपूर्ण सरकारी कार्यालय अब करेन्स्की सरकार के हाथ से निकल गये थे। विद्रोह ने एक साँस में भारी सफलता प्राप्त कर ली थी।

उसी दिन 10 बजे सबेरे सैनिक क्रान्तिकारी कमिटी ने लेनिन द्वारा तैयार किये हुए "रूस के नागरिकों के नाम" ऐतिहासिक घोषणापत्र को जारी करते हुए कहा कि अस्थायी सरकार का तख्ता उलट दिया गया है और राज्यशक्ति सोवियतों के हाथ में आ गयी है।

अपराह्न में लेनिन ने पेत्रोग्राद सोवियत की एक विशेष बैठक में भाषण दिया। भाषण–मंच पर अपने महान नेता को देखकर जनता कितनी ही देर तक करतलध्वनि और हर्षध्वनि करती रही। अपने भाषण में लेनिन ने समाजवादी क्रान्ति की विजय घोषित करते हुए बतलाया कि रूस में समाजवाद अवश्य विजयी होगा। अपने भाषण को समाप्त करते हुए उन्होंने कहा था : "विश्व समाजवादी क्रान्ति–जिन्दाबाद!"

सोवियतों की कांग्रेस – उसी रात को पौने 11 बजे स्मोल्नी में द्वितीय सोवियत–कांग्रेस आरम्भ हुई। इसमें केन्द्रीय और स्थानीय राज्यशक्ति के सोवियतों के हाथ में आने की बाकायदा घोषणा की गयी।

लेनिन को सोने या विश्राम करने की कहाँ फुर्सत थी! उन्होंने पहली सारी रात स्मोल्नी में रहते हुए विद्रोह के संचालन, सैनिकों के संगठन तथा सोवियत शासन के अत्यावश्यक पहले

(पेज 5 पर जारी)

(पेज 4 से आगे)

कदमों की व्यवस्था करने में बितायी थी। प्रायः दो दिन और दो रात लगातार काम करने के बाद, शरदप्रासाद पर अधिकार हो जाने तथा वहीं अस्थायी सरकार के गिरफ्तार कर लिये जाने पर, लेनिन ने 7 नवम्बर की रात को कुछ घण्टे स्मोल्नी के पास ही पार्टी के एक कार्यकर्ता के घर में विश्राम किया। लेकिन, उस वक्त भी उन्हें नींद नहीं आई। घर वाले जग न जायें, उसलिए बहुत चुपके से उठकर वह मेज पर जा बैठे, और वहाँ उन्होंने भूमि–सम्बन्धी फरमान तैयार किया। 8 तारीख का सारा दिन उन्होंने उसी तरह लगातार काम में बिताया। पेत्रोग्राद की प्रतिरक्षा तथा नगरवासियों के लिए रोटी का प्रबन्ध करना सबसे जरूरी और तुरन्त करणीय था। इनके अतिरिक्त उन्हें केन्द्रीय कमिटी की बैठक की भी अध्यक्षता करनी थी, जिसमें सोवियत सरकार के सदस्यों के बारे में विचार करना था। इसके बाद वह एक सम्मेलन में गये जिसमें उद्योग–धन्धों पर कमकर–संगठन के नियन्त्रण के बारे में बातचीत करनी थी। शाम तक उन्हें क्षण भर का भी अवकाश नहीं मिला।

शाम को वह सोवियतों की कांग्रेस के अधिवेशन के आरम्भ के समय भाषण देने गये। कांग्रेस ने समाजवादी क्रान्ति के महान नेता का जबर्दस्त स्वागत किया। लोग देर तक करतलध्वनि और हर्षोद्गार प्रकट करते रहे। कितनी ही देर तक लेनिन भाषण नहीं दे सके। इतिहास के महान नेता ने अब मानव इतिहास में एक नये युग की – सर्वहारा क्रान्ति और सर्वहारा के अधिनायकत्व के युग की – घोषणा की।

लेनिन के प्रस्ताव पर सोवियत–कांग्रेस ने सोवियत सरकार के पहले फरमान – शान्ति–सम्बन्धी फरमान और भूमि–सम्बन्धी फरमान – पास किये। ये युग–प्रवर्तक अभिलेख सर्वहारा अधिनायकत्व को मजबूत करने और समाजवाद का निर्माण करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साबित हुए। इसी कांग्रेस में कमकरों और किसानों की पहली सोवियत सरकार – जन–कमीसारों की परिषद् बनायी गयी। लेनिन परिषद् के प्रधानमन्त्री चुने गये।

सोवियत सरकार

देश में क्रान्ति महाविजयी हो चुकी थी। लेनिन अब नयी सरकार के मुखिया थे। क्रान्ति को सफल बनाने के लिए उन्होंने जिस तरह की तत्परता के साथ काम किया था, उसी तरह की तत्परता से अब उन्होंने सोवियत सरकार को मजबूत करने तथा समाजवाद का निर्माण करने के काम में हाथ लगाया। अभी तक उन्होंने अपने कौशल को क्रान्ति–युद्ध में दिखलाया था; अब अपनी असाधारण प्रतिभा का जौहर राज्य–प्रबन्धन में दिखलाना शुरू किया। इतिहास में ऐसा अन्य व्यक्ति नहीं देखा गया जो इतनी सैद्धान्तिक सूझ, राजनीतिक–प्रतिभा, दूरदर्शिता और इतना अदम्य साहस रखता हो। न ही कोई ऐसा राजनीतिक नेता हुआ जो जनता के साथ इतना घनिष्ट सम्बन्ध रखता हो और जिस में जनता इतना विश्वास रखती हो। लेनिन सच्चे अर्थों में "साधारण जनता" के नेता थे। क्रान्ति सफल बनाने के लिए उन्हें जितना काम करना पड़ा उससे कम काम अब लेनिन और सोवियत सरकार के ऊपर नहीं था। शोषक वर्ग को अधिकारच्युत किया जा चुका था। लेकिन उसका प्रतिरोध अभी खत्म नहीं हुआ था। पुराना, पूँजीवादी शासन यन्त्र क्रान्ति के लिए साधन नहीं, बल्कि भारी बाधक था। उसे तोड़ फेंकना जरूरी था जिससे कि सरकारी अफसर भीतर से गड़बड़ी न पैदा कर सकें। भारी कठिनाइयों में नगर के लिए खाद्य का प्रबन्ध करना था, कारखानों को फिर से चालू करना था, कमकरों–किसानों के राज्य का नये ढंग से निर्माण करना था। लेकिन कठिनाइयाँ लेनिन को अनुत्साहित नहीं कर सकती थीं। उनका महामन्त्र था : "विजय प्राप्त करना और शक्ति को अपने हाथ में रखना केवल उन्हीं लोगों के लिए सम्भव है जिनका जनता में विश्वास है और जो जनता की सृजनात्मक प्रतिभा में विश्वास रख कर छलांग मारने के लिए तैयार हैं।"

नयी सरकार का केन्द्र स्मोल्नी था। वहाँ हर वक्त लोग मधुमक्खियों की तरह अपने काम में व्यस्त रहते थे। एक क्षण का विश्राम किये बिना रात और दिन बड़े जोर–शोर के साथ क्रान्तिकारी कार्रवाइयाँ जारी रहतीं। लेनिन को दूर जाकर रहने की फुर्सत कहाँ थी?वह स्मोल्नी के ही भीतर रहते थे। राजनीतिक, आर्थिक, सैनिक, शिक्षा, संसृति तथा आन्दोलन सम्बन्धी तरह–तरह की समस्यायें उठ खड़ी होती थीं। पार्टी, कमकर या किसान राजकाज का कोई तजुर्बा नहीं रखते थे। यह तजुर्बा उन्हें इस वक्त हासिल करना था। लेनिन सभी बातों में उनका पथ–प्रदर्शन करने के लिए तैयार थे। सोवियत सरकार पुराने कानूनों और विधि–विधानों के अनुसार नहीं चलायी जा सकती थी। उसके लिए लेनिन ने नये फरमान, नये नियम, तथा कितने ही घोषणापत्र और लेख लिखे। नवम्बर के अन्त से जन–कमीसार–परिषद (मन्त्रि–मण्डल) प्रतिदिन बैठने लगी। उसकी कार्रवाइयों का संचालन लेनिन करते थे। साथ ही जनता के साथ घनिष्ट सम्बन्ध रखना भी जरूरी समझते थे। सोवियत शासन के पहले दो महीनों में उन्होंने 20 विशाल सार्वजनिक सभाओं में भाषण दिया। पेत्रोग्राद में होने वाली कितनी ही कांग्रेसों में उन्होंने रिपोर्टें पेश कीं तथा भाषण दिये और उनके लिए प्रस्ताव तथा अपीलें तैयार कीं।

कारखानों के कितने ही कमकर प्रतिनिधि–मण्डल, युद्ध के मोर्चे के सैनिकों के प्रतिनिधि तथा देहाती किसानों के प्रतिनिधि लेनिन से मिलकर उनके सामने अपनी शंकाओं और प्रश्नों को रखते। लेनिन उनका जवाब देते और जनता से कहते : नये जीवन का निर्माण–कार्य तुम अपने हाथों में लो।

स्थिति बड़ी खतरनाक थी। लेनिन को फौजी बातों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता थी। करेन्स्की और कजाक पेत्रोग्राद की ओर बढ़े आ रहे थे। नगर के भीतर भी जोखिम कम नहीं था। 11 नवम्बर को कादेतों (सैनिक अफसरों) की टुकड़ी ने विद्रोह कर दिया। मास्को में अभी भी लड़ाई जारी थी। लेनिन ने कहा कि राजनीतिक प्रश्न सैनिक प्रश्न के साथ विलीन होने लगे हैं। 9 नवम्बर की रात को स्तालिन के साथ लेनिन पेत्रोग्राद सैनिक भूभाग के सदर–दफ्तर में पहुँचे और सैनिक काम में नियुक्त साथियों से स्थिति के बारे में रिपोर्ट माँगी। इस समय की घटना के बारे में क्रान्तिकारी सैनिक कमेटी के एक सदस्य पोदवोइस्की ने कहा है :

"मैंने पूछा, इस आने का अर्थ अविश्वास या और कोई चीज है?इस पर व्लादिमिर ने बड़ी शान्ति से, किन्तु दृढ़तापूर्वक कहा : 'नहीं, अविश्वास नहीं, कमकरों–किसानों की सरकार सिर्फ यही जानना चाहती है कि उसके सैनिक–अधिकारी किस तरह काम कर रहे हैं।' उसी क्षण मैंने अनुभव किया कि हमारे यहाँ अधिनायकत्व काम कर रहा है, हमारे पास एक दृढ़ और मजबूत कमकर सरकार है।'

लेनिन सदर–दफ्तर में लगातार कई दिनों तक रहे और वहीं से उन्होंने करेन्स्की और क्रास्नोफ की सेनाओं के साथ सैनिक मुठभेड़ों का संचालन किया और उनके विरुद्ध लड़ने के लिए सभी उपलब्ध शक्तियों को चालित और संगठित किया।

अन्त में शत्रु की पराजय हुई।

सोवियत सरकार ने करेन्स्की और क्रास्नोफ के मंसूबों को विफल कर दिया।

कामेनफ, जिनोवियेफ, राइकोफ जैसों की भीतर से रोड़ा अटकाने की नीति अब भी बन्द नहीं हुई थी। समाजवादी क्रान्ति का मतलब है पुराने स्वार्थों का पूरी तरह से ध्वंस और अल्पजनहिताय की जगह बहुजनहिताय सरकार का शासन। लेकिन डुलमुल यकीन और नेतृत्व के भूखे ये लोग पहले तो सशस्त्र विद्रोह को शुरू करने में झिझकते थे, और अब माँग कर रहे थे कि मेन्शेविकों और समाजवादी–क्रान्तिकारियों को भी मिलाकर एक संयुक्त सरकार बनायी जाय। मेन्शेविक और समाजवादी–क्रान्तिकारी क्रान्ति के समय पूँजीवादी नेताओं की पूँछ पकड़े हुए थे। सोवियत सरकार को जो काम करना था उसमें ये कदम–कदम पर बाधक होते थे। भला ऐसे लोगों को साथ लेकर चलना कैसे सम्भव हो सकता था?केन्द्रीय कमिटी ने इसे 'सोवियत सरकार के नारे के प्रति गद्दारी' कहते हुए इस माँग को अस्वीत कर दिया। इस पर कामेनफ, राइकोफ और उनके दूसरे साथियों ने केन्द्रीय कमिटी और जन–कमिसार–परिषद (मंत्रि–मण्डल) से इस्तीफा दे दिया। किन्तु, इस इस्तीफे का लेनिन के दृढ़ संकल्प पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने उनकी कोई परवाह न करके पार्टी सदस्यों और कमकर जनता को सम्बोधित करते हुए कहा :

"कमकर जनता को आश्वस्त और दृढ़ रहना चाहिए! हमारी पार्टी, सोवियत बहुमत की पार्टी, उनके हितों की रक्षा के लिए ठोस और एकताबद्ध होकर खड़ी है। पहले ही की तरह आज भी नगरों के लाखों कमकर, खन्दकों के सैनिक और गाँवों के किसान करोड़ों की संख्या में हमारी पार्टी के पीछे हैं। पार्टी का सकल्प है कि जैसे भी हो शान्ति और समाजवाद की विजय प्राप्त की जाय।"

क्रान्ति के आरम्भिक दिनों में ही लेनिन ने सोवियतों की भूमि की प्रतिरक्षा के कार्य को सबसे आगे रखा। "हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि प्रतिरक्षात्मक युद्ध, जो हमारे ऊपर जबर्दस्ती लादा जा सकता है– हमें नहीं करना है।" इसीलिए उन्होंने नारा दिया : "समाजवादी पितृभूमि की रक्षा करो!" उन्होंने सोवियत भूमि में रहने वाली जातियों की ओर से घोषित किया कि देश के ऊपर हथियारबन्द हमला होने पर सारी कमकर जनता अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए हथियार उठायेगी : "हम, कमकर और किसान अपने से और सारी दुनिया से कहते हैं, और इसे साबित करके भी दिखायेंगे, कि सोवियत गणराज्य की रक्षा के लिए हम सब उठ खड़े होंगे।"

नया शासन–यन्त्र – क्रान्ति के बाद पहले सप्ताहों में लेनिन का सारा ध्यान नवोत्पन्न सोवियत राज्य के निर्माण में लगा रहा। सोवियत राज्य एक बिल्कुल नये तरह का राज्य था जिसका इतिहास में उदाहरण नहीं मिलता। उसके नेतृत्व में समाजवाद की इमारत बनाने के लिए जमीन साफ हो गयी, पूँजीवादी राज्य के सारे शासन–यन्त्र को ध्वस्त कर दिया गया, पुराने जारशाही कर्मचारियों के लिए भीतर से तोड़–फोड़ कर सकने का कोई मौका नहीं छोड़ा गया, क्रान्ति–विरोधी संविधान सभा को तोड़ दिया गया; जमींदारी, जाति–व्यवस्था, स्त्रियों की असमानता, जातीय–उत्पीड़न और ईसाई गिरजाघरों के विशेषाधिकारों को सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में पूरी तरह खत्म कर दिया गया। इसके बाद समाजवादी इमारत की नींव का पहला पत्थर रखा गया। सामाजिक उत्पादन और वितरण का नियन्त्रण कमकरों के हाथ में दिया गया। बैंकों, रेलों तथा बड़े पैमाने के उद्योग–धन्धों का राष्ट्रीयकरण आरम्भ किया गया। सोवियत सरकार ने अपने मुख्य–मुख्य फरमान जारी किये। इनमें से बहुतों का मसौदा लेनिन ने बनाया था।

लेनिन ने लिखा था :

"हमारा फरमान कार्रवाई करने की पुकार है, लेकिन पुराने ढंग की कार्रवाई की पुकार नहीं है कि 'कमकरो, उठो और पूँजीपति वर्ग को उखाड़ फेंको!' नहीं, यह जनता के लिए पुकार है। यह रचनात्मक काम करने की पुकार है। ये फरमान, ऐसी हिदायतें हैं जो अमली काम के लिए जनता का आह्वान करती हैं।"

सोवियत राज्य और सभी मन्त्रि–विभागों की स्थापना में लेनिन का सीधा हाथ था। उनकी प्रेरणा से सर्वहारा अधिनायकत्व का सुदृढ़ हथियार, प्रतिक्रान्तिध्वंसक अखिल–रूसी असाधारण–कमीशन – चेका – स्थापित किया गया। इसके मुखिया जेर्जिन्स्की बनाये गये। लेनिन के प्रस्ताव पर राष्ट्रीय अर्थनीति की सर्वोच्च परिषद् बनायी गयी। इसका काम था समाजवादी राष्ट्रीय अर्थनीति की योजना बनाना तथा उसे कार्यरूप में परिणत करना।

द्वितीय सोवियत कांग्रेस – लेनिन के प्रस्ताव पर द्वितीय अखिल–रूसी सोवियत कांग्रेस ने जातीय विषय सम्बन्धी मन्त्रि–विभाग की स्थापना करके स्तालिन को जन–कमिसार नियुक्त किया। पूँजीवादी राज्यों का काम जातियों का उन्मोचन और संवर्धन नहीं, बल्कि उत्पीड़न और शोषण है। इसलिए उनके यहाँ ऐसे मन्त्रि–विभाग की आवश्यकता नहीं होती। लेकिन सच्चे समाजवाद में – एटली और मौरिसन के खोटे समाजवाद में नहीं – जातियों का शोषण और उत्पीड़न असम्भव है। 16 नवम्बर, 1917 को लेनिन और स्तालिन के हस्ताक्षर से "रूस की जातियों के अधिकारों की घोषणा" निकाली गयी। इस घोषणा ने जारशाही के जमाने की सतायी गयी और परतन्त्र जातियों को समान अधिकार प्रदान किये।

अखिल–रूसी केन्द्रीय कार्यकारिणी कमिटी की बैठक में 17 नवम्बर, 1917 को लेनिन ने कहा :

"समाजवाद ऊपर से जारी किये गये आदेशों के द्वारा नहीं निर्मित किया जा सकता। नौकरशाही यन्त्रवाद उसके भावों के विरुद्ध है; सजीव और सृजनात्मक समाजवाद जनसाधारण का अपना सृजन है।"

उन्होंने भली प्रकार समझ लिया था कि काम में जनता की प्रेरणा, कमकरों और किसानों की सृजनात्मक प्रतिभा ही ऐसी चीज है, जिसके जरिये श्रम की उपज को बढ़ाया जा सकता है तथा लोगों की राजनीतिक और सांस्कृतिक शिक्षा जल्दी से जल्दी पूरी की जा सकती है। 18 नवम्बर को जनता से अपील करते हुए लेनिन ने लिखा था :

"साथी मेहनतकशो! याद रखो कि तुम स्वयं अब राज्य का शासन कर रहे हो। यदि तुम एकताबद्ध होकर राज्य के सभी कामों को अपने हाथ में नहीं ले लेते, तो कोई तुम्हारी सहायता नहीं कर सकेगा। तुम्हारा सोवियतें अब राज्य के संगठन, राज्यशक्ति के यन्त्र हैं। ये सभी प्रश्नों पर फैसला देने की क्षमता रखती हैं।"

दिसम्बर,1917 के अन्त में फिनलैण्ड के भीतर (किन्तु पेत्रोग्राद से अधिक दूर नहीं) लेनिन ने कुछ दिनों तक विश्राम किया। लेकिन उसे पूरा विश्राम नहीं कहा जा सकता था क्योंकि इसी समय उन्होंने 'बोल्शेविक कैसे संगठित करें' नामक महत्वपूर्ण लेख लिखा।

एक तरफ जनता का विशाल भाग सोवियत सरकार और उसके नेता के युग–प्रवर्तक कामों को देखकर फूला नहीं समाता था, तो दूसरी तरफ उसके कारण पूँजीवादी तथा उनके लगुवे–भगुवे, मेन्शेविक और समाजवादी–क्रान्तिकारी, गुस्से से पागल हो रहे थे। सभी साम्राज्यवादी देशों की सरकारें इन लोगों की पीठ पर थीं। कारण यह कि वे बोल्शेविक क्रान्ति को अपने लिए सबसे खतरे की चीज समझती थीं। वे चाहती थीं कि आँखों के काँटे लेनिन, को रास्ते से निकालकर बाहर किया जाय। उन्होंने पार्टी के नेताओं, और विशेषकर लेनिन, की हत्या कराने की कोशिश की।

14 जनवरी, 1918 को लेनिन की मोटर पर गोलियाँ चलायी गयीं। मोटर में कई जगह छेद हो गये, लेकिन लेनिन को जरा भी चोट नहीं आई।

क्रान्ति–विरोधी लोग संविधान सभा को सोवियत शासन के विरुद्ध हथियार के तौर पर इस्तेमाल करना चाहते थे। बोल्शेविकों ने उसे जनता के हित के खयाल से बुलाया था। उनका यह भी विचार था कि अगर संविधान सभा ने वैसा करने से इन्कार किया तो जनता उसके विरुद्ध हो जायगी। 18 जनवरी, 1918 को संविधान सभा की पहली बैठक हुई। उसने सोवियत सरकार और उसके द्वारा जारी किये गये फरमानों को मानने से इन्कार कर दिया। ऐसी संविधान सभा की जनसाधारण के लिए अब क्या आवश्यकता हो सकती थी?उसे तोड़ दिया गया। धनिकों की 'जनतन्त्रता' को फाड़ फेंकने के कारण दुनिया के धनिकों की सरकारें इसे स्वेच्छाचारिता, अधिनायकतन्त्र और जाने क्या–क्या कहकर प्रचार करने से भला कैसे पीछे रह सकती थीं?

तृतीय सोवियत कांग्रेस (1918 ई) – 23 जनवरी, 1918 को संविधान सभा के भंग होने के पाँच दिन बाद, तृतीय अखिल–रूसी–सोवियत कांग्रेस का उद्घाटन हुआ। सोवियत शासन को स्थापित हुए अब तक दो महीने पन्द्रह दिन बीत चुके थे। कांग्रेस में जन–कमिसार–परिषद के कामों की रिपोर्ट देते हुए लेनिन ने कहा : "हमारा सोवियत समाजवादी प्रजातन्त्र, अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद के दीपस्तम्भ की तरह, और सारी मेहनतकश जनता के लिए उदाहरण के तौर पर, दृढ़तापूर्वक खड़ा रहेगा।" लेनिन द्वारा उपस्थित की गयी "कमकर तथा शोषित जनता के अधिकारों की घोषणा" को कांग्रेस ने स्वीकार किया। यह सोवियत संविधान की पहली रूपरेखा थी। इसमें, सोवियत राज्य की पहली कार्रवाइयों को कानूनी रूप दिया गया था।

(राहुल सांकृत्यायन द्वारा लिखित लेनिन की जीवनी के अंश)

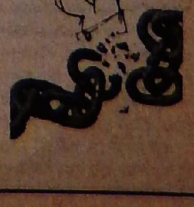

अभी भी जीवित है ज्वाला!

(पेज 1 से आगे)

था पर सारतः उन पर पार्टी और राज्य के नौकरशाहों का नियंत्रण था जो मजदूरों के शोषण से उगाहे गये अतिरिक्त मूल्य का इस्तेमाल अपनी अय्याशी और सोवियत संघ को एक सामाजिक साम्राज्यवादी देश में तब्दील कर देने के लिए करते थे।

यही वह नकली समाजवाद, यानी राजकीय पूँजीवादी तंत्र था जो अपने आन्तरिक अन्तरविरोधों के चलते नवें दशक में ग्लासनोस्त-पेरेस्त्रोइका से होते हुए विघटित हो गया। सोवियत संघ के विघटन के साथ ही पश्चिमी पूँजीवाद के तिकड़मों-षड्यंत्रों और चौतरफा कोशिशों के चलते पूर्वी यूरोप की भूतपूर्व समाजवादी व्यवस्थाएँ भी ढह गयीं और पश्चिमी पूँजी ने बिना देर किये इन सभी देशों को रौंद डाला।

•

लेकिन जिस समय सोवियत संघ में पूँजीवादी पुनर्स्थापना की शुरुआत हुई, उस समय तक माओ के नेतृत्व में चीनी जनता समाजवाद के परचम को उठाकर आगे बढ़ना शुरू कर चुकी थी। यही वह समय था जब द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पूर्वी यूरोप में भी लाल सत्ताएँ कायम हुई थीं। हालाँकि सोवियत संघ में पूँजीवाद की बहाली के बाद कमजोर आधार वाली ये सत्ताएँ टिकी नहीं रह सकीं लेकिन एक काल विशेष में विशेष शक्ति सन्तुलन को बदलने में तो इनकी भूमिका थी ही।

अक्टूबर क्रान्ति के घन-गर्जन ने औपनिवेशिक देशों में राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों के लिए एक नयी प्रेरणा का संचार किया था। राष्ट्रीय मुक्ति युद्ध अक्टूबर क्रान्ति के प्रभाव में ही सबसे तेजी से संगठित हुए। लेनिन के शब्दों में राष्ट्रीय मुक्ति युद्ध विश्व सर्वहारा क्रान्ति के अविभाज्य अंग थे। दूसरे विश्व युद्ध के बाद के तीन दशकों के दौरान उपनिवेशवाद की पराजय के रूप में इन राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों की परिणति सामने आयी। अनेक देशों में उपनिवेशवाद से मुक्ति के बाद देशी बुर्जुआ शासन की स्थापना हुई जो अलग-अलग हद तक साम्राज्यवाद से नत्थी थे और सारतः प्रतिक्रियावादी शासक ही थे लेकिन दुनिया के पैमाने पर यह जनता की एक विजय थी। उपनिवेशवाद का खात्मा ऐतिहासिक अर्थों में साम्राज्यवाद का पीछे हटना था और मुक्तिकामी जनता की एक विजय थी। चीन ही नहीं कोरिया और वियतनाम में भी सर्वहारा की हिरावल पार्टी राष्ट्रीय मुक्ति युद्ध का नेतृत्व कर रही थी। हिन्दचीन, इंडोनेशिया, फिलिप्पीन्स और बर्मा में सर्वहारा पार्टियाँ शक्तिशाली सामाजिक आधार बनाते हुए उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष का नेतृत्व कर रही थीं। इन सभी देशों में कम्युनिस्ट आन्दोलन काफी आगे था।

कहा जा सकता है कि अक्टूबर क्रान्ति से लेकर पिछली शताब्दी के छठे दशक तक क्रान्ति की धारा प्रतिक्रान्ति की धारा पर हावी रही। अक्टूबर क्रान्ति एक ऐसा दिन था जब शताब्दियों के काम को एक ही दिन में अंजाम दिया गया। इसके बाद चार दशक तक इतिहास लगातार तेज गति से आगे बढ़ा। द्वितीय विश्व युद्ध की पूर्ववेला और युद्ध के कुछ प्रारम्भिक वर्षों के दौरान भले ही फासीवाद हावी रहा लेकिन इस दौर में भी सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में जनता की शक्ति उसे लगातार टक्कर देती रही और फिर समाजवादी राज्य के नेतृत्व में ही फासीवाद की ताकतों को निर्णायक शिकस्त दी गयी। युद्ध के बाद पूर्वी यूरोप के देशों में लाल सत्ताएँ कायम हुईं, चीन में कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में क्रान्ति विजयी हुई और एशिया-अफ्रीका के अनेक देश उपनिवेशवाद से मुक्त हो गये। अधिकांश उपनिवेशों में मुक्ति संघर्ष काफी आगे बढ़े हुए थे और साम्राज्यवादियों का पीछे हटना बस वक्त की बात थी। इस पूरे परिदृश्य को देखते हुए यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि 1917 के बाद के चालीस वर्षों तक प्रतिक्रान्ति की लहर पर क्रान्ति की लहर ही हावी रही। इतिहास लगातार अभूतपूर्व गति से आगे बढ़ता रहा जिसकी शुरुआत अक्टूबर क्रान्ति से हुई थी।

•

आधुनिक विश्व इतिहास को गढ़ने में जिन दो क्रान्तियों ने सर्वाधिक मूलभूत भूमिका निभायी, वे थीं 1789 की फ्रांसीसी क्रान्ति और 1917 की अक्टूबर क्रान्ति। पूँजीवाद और सर्वहारा के बीच के विश्व ऐतिहासिक महासमर के पहले चक्र का पहला अहम मुकाम था 1871 का पेरिस कम्यून जब पहली बार मजदूरों ने अपना राज कायम किया। केवल 72 दिनों के अल्पकालिक शासन ने समाजवाद की एक भावी तस्वीर पेश की। आने वाले मजदूर राज का एक ट्रेलर पेश करके पेरिस कम्यून विलुप्त हो गया पर वह इतिहास पर एक अमिट छाप छोड़ गया जो दुनिया के मजदूरों और कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों को प्रेरित करती रही। कम्यून के सबकों के मार्क्स द्वारा किए समाहार को आगे बढ़ाते हुए लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की संगठित और जुझारू क्रान्तिकारी पार्टी गढ़ने की अवधारणा और प्रणाली विकसित की, उसके नेतृत्व में सुविचारित और योजनाबद्ध ढंग से क्रान्ति करने का विज्ञान और सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत समाजवादी संक्रमण को आगे बढ़ाने के तरीके विकसित किये। समाजवाद की समस्याओं पर भी लेनिन ने सोचना शुरू कर दिया था। उसी कड़ी को बाद में माओ ने आगे बढ़ाया और पूँजीवादी पुनर्स्थापना रोकने का शास्त्र विकसित कर मार्क्सवादी विज्ञान को नयी ऊँचाइयों तक पहुँचाया।

जैसा कि हम पहले चर्चा कर रहे थे, अक्टूबर क्रान्ति के बाद से इतिहास की गति निरन्तर तेज रही और दुनिया के पैमाने पर क्रान्ति की लहर हावी रही। इधर दूसरे विश्वयुद्ध के बाद नये साम्राज्यवादी चौधरी अमेरिका के नये नेतृत्व में दुनिया भर के साम्राज्यवादियों ने समाजवादी खेमे के विरुद्ध शीत युद्ध छेड़ रखा था। ऐसे समय में जब सोवियत संघ में संशोधनवादी सत्ता का पतन हुआ तो पूँजीवाद को एक नयी ताकत हासिल हो गयी। विश्व पैमाने पर वर्ग शक्ति सन्तुलन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। सोवियत संघ में समाजवाद की पराजय महज किसी एक देश में समाजवाद की हार नहीं थी। सोवियत संघ पूँजी के विरुद्ध विश्व ऐतिहासिक महासमर में सर्वहारा वर्ग की अग्रिम चौकी था। वहाँ नये बुर्जुआ वर्ग का सत्ता में आना मजदूर वर्ग और पूरी दुनिया की मुक्तिकामी जनता के लिए एक भारी धक्का था। फिर भी हम ऐसा नहीं कह सकते कि ऐसा होते ही प्रतिक्रान्ति की लहर हावी हो गयी थी। सोवियत संघ में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना के बाद भी चीनी क्रान्ति दुनिया की जनता के लिए ऊर्जा और प्रेरणा का स्रोत बनी रही। पचास और साठ के दशक में राष्ट्रीय मुक्ति युद्ध उफान पर थे और नवउपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष भी दुनिया के कई देशों में विजय के करीब थे। 1960 का दशक एशिया-अफ्रीका-लातिन अमेरिका के अधिकांश देशों से उपनिवेशवाद के खात्मे का साक्षी बना। हालाँकि साम्राज्यवाद शोषण के नये तौर-तरीके अपना रहा था। नवऔपनिवेशिक तरीके भी विफल होने के बाद आर्थिक ताकत के बूते पर लूट की नई तरकीबें उसने इजाद कर ली थीं, फिर भी उपनिवेशों की समाप्ति दुनिया की जनता की एक बड़ी विजय थी।

1956 के बाद खुश्चेव ने स्तालिन पर कीचड़ उछालते हुए शान्तिपूर्ण संक्रमण, शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व और शान्तिपूर्ण प्रतिस्पर्द्धा की संशोधनवादी गन्दी हवा बहाते हुए दुनिया भर में क्रान्तिकारी संघर्षों को भटकाने और कमजोर करने की मुहिम शुरू की जिसने दुनिया के पैमाने पर क्रान्ति की धारा को भारी नुकसान पहुँचाया और क्रान्तिकारी कतारों में विभ्रम और निराशा पैदा की। ऐसे में चीन की पार्टी ने जब महान बहस की शुरुआत की तो इसने दुनिया भर के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों में आशा का संचार किया। समाजवादी संक्रमण की समस्याओं पर लेनिन के चिन्तन की कड़ी को आगे बढ़ाते हुए लम्बे चिन्तन के बाद और रूस में पूँजीवादी पुनर्स्थापना के अनुभवों का समाहार करते हुए माओ-त्से-तुङ ने महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति का दर्शन प्रस्तुत किया और उसे व्यवहार में उतारा। उन्होंने समाजवादी संक्रमण की दीर्घकालिक प्रकृति पर जोर देते हुए अधिरचना में क्रान्ति और सतत क्रान्ति जारी रखने की जरूरत बतायी, सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत पूँजीवादी पथगामियों के विरुद्ध निरन्तर संघर्ष और चौकसी पर जोर दिया। पूरी दुनिया में संशोधनवाद के साथ आमने-सामने के संघर्षों को इससे दिशा मिली। हर जगह संशोधनवादी पार्टियों से अलग मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टियाँ संगठित होने लगीं। लेकिन 1976 में माओ के निधन के बाद चीन में भी पूँजीवाद की पुनर्स्थापना हो गयी। यह कोई विडम्बना या समझ में न आने वाली बात नहीं थी। चीन एक पिछड़ा देश था और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की समझ बनने तक वहाँ पूँजीवादी तत्व अपने आप को काफी मजबूत कर चुके थे।

पिछली शताब्दी के छठे दशक से लेकर 1976 में माओ के निधन तक क्रान्ति की धारा और प्रतिक्रान्ति की धारा एक-दूसरे से लगातार जूझती-टकराती रहीं। दुनिया के पैमाने पर ये एक-दूसरे से गुँथी-बुनी सी चलती रहीं, कभी क्रान्ति की धारा हावी होती थी तो कभी प्रतिक्रान्ति की। लेकिन 1976 के बाद प्रतिक्रान्ति की धारा हावी होने लगी। चीन के बाद अल्बानिया में भी समाजवादी सत्ता का पतन हो गया। जो लोग अब भी सोवियत संघ के समाजवादी होने का भ्रम पाले हुए थे उन्हें ग्लासनोस्त और पेरेस्त्रोइका तक समझ में आने लगा था कि यह समाजवाद नहीं है। लेकिन सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप के देशों की भूतपूर्व समाजवादी व्यवस्थाओं के पतन के बाद दुनिया की मेहनतकश जनता के बहुत बड़े हिस्से में गहरी निराशा छा गयी।

विश्व स्तर पर श्रम और पूँजी के विश्व ऐतिहासिक महासमर का पहला चक्र माओ के निधन के बाद चीन में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना के साथ समाप्त हो गया। इस प्रथम चक्र के अन्त में विश्व की जनता एक बार फिर वहाँ खड़ी थी जहाँ विश्व सर्वहारा के पास अपने मुक्त क्षेत्र के आधार इलाके के रूप में कोई भी समाजवादी राज्य नहीं रह गया। उसके पास मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन-स्तालिन-माओ जैसा कोई मान्य अन्तरराष्ट्रीय नेता या मार्क्स-लेनिन-माओ की पार्टियों जैसी संघर्षों की आग में तपी-मँजी कोई अनुभवी पार्टी भी नहीं रहा। सामयिक तौर पर यह पराजय और विपर्यय का दौर है जब प्रतिक्रिया का अन्धकार-सा छाया हुआ है। साम्राज्यवाद आक्रामक है और पूँजी की ताकतें पूरी दुनिया में तमाम सीमाओं को रौंदते हुए फैल रही हैं। इस दौर की तरह-तरह से व्याख्याएँ की जा रही हैं। कोई एकध्रुवीय विश्व के रूप में इसकी व्याख्या कर रहा है तो कोई अधिसाम्राज्य की बातें कर रहा है। जैसे कि साम्राज्यवाद के वर्चस्व को कोई प्रभावी चुनौती ही नहीं मिल रही है। साम्राज्यवाद की दिखायी पड़ने वाली शक्तिमत्ता के पीछे की सच्चाई तो यह है कि पूँजीवाद के बुनियादी अन्तरविरोध और भी तीखे होते जा रहे हैं। साम्राज्यवादियों के आपसी अन्तरविरोध और उनकी गलाकाटू होड़ लगातार जारी है और अब और भी तीखी होती जा रही है। नयी धुरियाँ और नये समीकरण बन रहे हैं। दूसरी ओर जनता के संघर्ष भी यहाँ-वहाँ जारी हैं। बेशक यह क्रान्ति की शक्तियों के बिखराव का दौर है। क्रान्ति की लहर पर आज प्रतिक्रान्ति की लहर हावी है। लेकिन जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, परिवर्तन का सिलसिला लगातार जारी रहता है। गतिरोध के दौर में भी प्रगति पूरी तरह कभी रुकती नहीं। जब इतिहास के चक्र को कुछ समय के लिए उल्टा घुमा दिया जाता है, तब भी इतिहास निर्मात्री शक्तियाँ इतिहास के गर्भ में पलती रहती हैं। वर्ग संघर्ष कभी रुकता नहीं है। आज भी नहीं रुका है। दुनिया के कोने-कोने में जनता लड़ रही है। क्रान्ति की शक्तियाँ बिखरी जरूर हैं पर संघर्ष बन्द नहीं हुआ है। ब्राजील के भूमिहीन मजदूरों का आन्दोलन, मेक्सिको में जपातिस्टा का आन्दोलन हो या विकसित देशों के मजदूरों के बार-बार फूट पड़ने वाले उग्र प्रदर्शन हों, सर्वहारा लगातार पूँजी के हमलों का प्रतिरोध कर रहा है। पेरू में चेयरमैन गोंजालो की गिरफ्तारी के बाद आन्दोलन बिखर गया है लेकिन खत्म नहीं हुआ है। नेपाल में अनेक समस्याओं के बावजूद जनता का क्रान्तिकारी संघर्ष जारी है। भारत ही नहीं दुनिया के हर देश में शायद ही कोई ऐसा दिन होता हो जब मेहनतकश जनता अपने अधिकारों के लिए संघर्ष में न उतरती हो। समाजवाद की पराजय का लगातार ढिंढोरा पीटने के बावजूद पूँजीपति वर्ग लगातार क्रान्तियों के भय से आक्रान्त है और बुर्जुआ मीडिया निरन्तर समाजवाद और उसके नेताओं के खिलाफ झूठे दुष्प्रचार में लगा रहता है। यह तो निर्विवाद है कि समाजवादी क्रान्ति का परचम आज भी धूल में लिथड़ा नहीं है।

मजदूर वर्ग को आज यह समझाने की जरूरत है कि कुछ क्रान्तियों की पराजय और कुछ सामाजिक प्रयोगों की विफलता विचारधारा की निर्णायक विफलता नहीं है। आज की पूँजीवादी दुनिया में जिस प्रकार पूँजीवादी उत्पादन वित्तीय पूँजी के सागर में बुलबुले के समान रह गया है, लूट के बँटवारे के लिए लुटेरे आपस में लड़ रहे हैं, यह सब मार्क्सवाद के सिद्धान्तों को सच्चा साबित कर रहा है। तो फिर, क्रान्ति के बारे में भी मार्क्सवाद ने जो कहा है वह भी सही है। इतिहास में सामाजिक क्रान्तियों के प्रारम्भिक संस्करण प्रायः विफल होते रहे हैं। पूँजीवाद ने तीन सौ वर्ष लम्बे संघर्ष और कई-कई पराजय के बाद सामन्तवाद को निर्णायक रूप से परास्त किया था। सर्वहारा क्रान्ति तो केवल तीन सौ वर्ष पुराने पूँजीवाद के विरुद्ध नहीं पाँच हजार वर्ष पुराने पूरे वर्ग समाज के विरुद्ध क्रान्ति है, निजी सम्पत्ति की समूची व्यवस्था, मूल्यों-मान्यताओं-संस्कारों के विरुद्ध इतिहास की सबसे आमूल परिवर्तनवादी क्रान्ति है। यह इतिहास की पहली सचेतन क्रान्ति है। हर प्रकार की वर्गीय सत्ता और वर्गीय संस्थाओं का समूल उच्छेदन करने वाली क्रान्ति है जिसके लिए समस्त समष्टिगत शक्ति के व्यापकतम-सूक्ष्मतम और जटिलतम प्रयोग की आवश्यकता होती है। यह ऐतिहासिक मिशन केवल वही वर्ग पूरा कर सकता है जिसके पास खोने के लिए सिर्फ अपनी बेड़ियाँ हैं और पाने के लिए सारा विश्व है। केवल सर्वहारा वर्ग ही इस क्रान्ति को अंजाम दे सकता है।

1917 को तो अभी सिर्फ 89 साल बीते हैं। 1976 को सिर्फ तीस साल ही तो हुए हैं। फिर, मायूसी कैसी? यह समस्याएँ हमारे लिए सोचने का सबब हैं, चिन्तन और चिन्ता का सबब हैं, पर निराशा के सागर में डूबने-उतराने का सबब ये कतई नहीं हो सकतीं।

आज हमारे सामने प्रश्न अक्टूबर क्रान्ति के नये संस्करणों के निर्माण का है। इतिहास कभी भी अपने आप को हू-ब-हू नहीं दोहराता है, या यूँ कहें कि क्रान्तियों की कार्बन कॉपी नहीं की जा सकती। वर्तमान अतीत से सीखकर भविष्य का निर्माण करता है, अतीत के साँचे में भविष्य को नहीं ढाला जा सकता है। इतिहास में प्रायः ऐसा होता रहा है कि महान क्रान्तियों का आलोचनात्मक विवेक के साथ अध्ययन करने के बजाय प्रायः उनके नारों, मार्ग और मॉडल का अनुकरण करने की कोशिश की जाती है। पर ऐसा करके अक्टूबर क्रान्ति के नये संस्करण की सर्जना कतई नहीं की जा सकती। हमारा पहला काम है कि विश्व सर्वहारा क्रान्ति के लम्बे इतिहास के चार मील के पत्थरों—पेरिस कम्यून, अक्टूबर क्रान्ति, चीनी क्रान्ति और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति—का गहन अध्ययन करें। खासकर आखिरी मुकाम, 1966-76 तक चीन में माओ के नेतृत्व में पूँजीवादी पुनर्स्थापना रोकने के लिए किये गये शानदार प्रयोगों और मार्क्सवादी विज्ञान में किये गये इजाफे का अध्ययन करें। इस मुकाम में सर्वहारा क्रान्ति के

(पेज 7 पर जारी)

फिर भड़केगी जंगल की आग!

(पेज 1 से आगे)

विज्ञान को जो सर्वतोमुखी समृद्धि प्रदान की, उसे आत्मसात करें और इस विचारधारात्मक सम्पदा के आधार पर आज की दुनिया को जानने-समझने की कोशिश करें। हमें अतीत की क्रान्तियों से मार्गदर्शक सिद्धान्तों के रूप में विचारधारात्मक सारतत्व को लेना है। उन क्रान्तियों की रणनीति, आम रणकौशल, क्रान्ति के मार्ग, प्रचार और उद्वेलन के नारों आदि-आदि से हम टुकड़ों में कुछ सीख सकते हैं, कुछ आइडिया ले सकते हैं, लेकिन उन्हें हू-ब-हू उधार नहीं ले सकते। परिस्थितियों को सिद्धान्त के खाँचे में फिट नहीं किया जा सकता बल्कि परिस्थितियों का अध्ययन करके सिद्धान्त का निर्माण किया जाता है।

लेनिन के समय से ही नहीं, माओ के जीवनकाल से भी आज की दुनिया काफी कुछ बदल चुकी है। यह सही है कि हम आज भी साम्राज्यवाद के युग में जी रहे हैं, लेकिन दुनिया की परिस्थितियों में काफी बदलाव आये हैं। राष्ट्रीय प्रश्न आज लगभग समाप्त हो चुका है। तीसरी दुनिया के भी अधिकांश देशों में पूँजीपति वर्ग का कोई भी हिस्सा आज जनमुक्ति संघर्ष का भागीदार नहीं हो सकता। तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों में शासक पूँजीपति वर्ग साम्राज्यवाद का कनिष्ठ साझीदार है। वह साम्राज्यवाद से लड़ता-झगड़ता भी है तो जनता की लूट में अपना हिस्सा बढ़ाने के लिए। तीसरी दुनिया के लगभग सभी देशों में पूँजी और श्रम के बीच का अन्तरविरोध आज का प्रधान अन्तरविरोध बन चुका है। लेनिन के समय में वित्तीय पूँजी के निर्यात के तौर-तरीकों से काफी हद तक भिन्न और नये रूपों में भी आज पूँजी का निर्यात हो रहा है। राष्ट्रपारीय निगमों का जबर्दस्त विस्तार हुआ है और उनकी प्रकृति और कार्य-प्रणाली में भी काफी बदलाव आया है। वित्तीय पूँजी के निर्यात के नये-नये तौर-तरीके विकसित हुए हैं जिसने राष्ट्र-राज्यों की भूमिका में महत्वपूर्ण बदलाव किये हैं। यह तो तय है कि राष्ट्र-राज्यों की भूमिका पूँजीवाद के रहते बनी रहेगी लेकिन इसमें आज काफी बदलाव आये हैं।

विश्व पूँजीवादी तंत्र के सारतत्व और स्वरूप, दोनों में काफी परिवर्तन आये हैं। उत्पादक और अनुत्पादक पूँजी का अनुपात आज एक के मुकाबले तीन से भी अधिक हो चुका है। सर्वहारा वर्ग की संगठनबद्धता की चेतना को उन्नत तकनोलॉजी और सोची-समझी राजनीतिक रणनीति के तहत शासक वर्ग पूरी दुनिया में खण्ड-खण्ड बाँटने की कोशिश में लगा हुआ है। एक हद तक उसे इसमें सफलता भी मिली है। बड़े कारखानों में होने वाले कामों को छोटे-छोटे कारखानों में बिखरा देने, उत्पादन को छोटी-छोटी घरेलू इकाइयों तक में बाँट देने से लेकर एक ही माल के अलग-अलग हिस्से अलग-अलग देशों तक में बनाने जैसे तरीके अपनाकर सर्वहारा वर्ग को बड़े पैमाने पर एकजुट होने से रोकने की नयी-नयी तरकीबें निकाली जा रही हैं। इन सबने सर्वहारा वर्ग में कमजोर और बिखरे होने का अहसास एक हद तक पैदा किया है। लेकिन इसका एक दूसरा पहलू भी है। उत्पादन को दुनिया भर में इस प्रकार बाँट देने से एक नयी परिघटना सामने आयी है, बुद्धिजीवी लोग जिसे 'ग्लोबल असेम्बली लाइन' का नाम देते हैं, जिसने सर्वहारा की वैश्विक एकजुटता का एक नया आधार मुहैया कराया है।

इन तमाम परिस्थितियों को समझकर ही अक्टूबर क्रान्ति के उस नये संस्करण की सर्जना की जा सकती है जो विश्व पूँजीवाद और सर्वहारा वर्ग के बीच विश्व ऐतिहासिक महासमर के दूसरे चक्र का पहला मील का पत्थर बनेगा।

•

दुनिया की परिस्थितियों में आये इन सारे बदलावों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि आज नवजनवादी क्रान्ति की मंजिल चन्द एक देशों को छोड़कर दुनिया में कहीं नहीं रह गई है। लेकिन आज भी कुछ लोग माओ के अवदानों को सही ढंग से अपनाने की जगह उनसे नवजनवादी क्रान्ति का मॉडल उधार लेकर आज लागू करने की कोशिश में लगे हुए हैं। ये विचारधारा और कार्यक्रम का अन्तर ही नहीं समझते। नयी परिस्थितियों का अध्ययन कर अपनी रणनीति बदलने के बजाय ये लोग पुराने जूते में फिट करने के लिए पैर को ही काटने में जुटे हुए हैं।

तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों में नवजनवादी क्रान्ति की मंजिल तो आज नहीं रह गयी है लेकिन यहाँ आज समाजवादी क्रान्ति भी वही नहीं होगी जिसकी बात मार्क्स ने की थी या जो रूस में सम्पन्न हुई थी। रूस की अक्टूबर क्रान्ति विशेष परिस्थितियों में सफल हुई थी। रूस पूरब और पश्चिम के पुल पर था, रूस जैसे देश ज्यादा नहीं थे। वहाँ जो क्रान्ति हुई वह उस समय केवल रूस में ही सम्भव थी। वह समाजवादी क्रान्ति थी लेकिन उसे आसन्न बुर्जुआ क्रान्ति के कार्यभारों को भी पूरा करना था। इसके अलावा, रूसी बुर्जुआ वर्ग इस क्रान्ति के प्रति सावधान नहीं था। 1905-07 की क्रान्ति के बुरी तरह कुचल दिये जाने के बाद वह जारशाही के पतन की बात तो सोचता था और फरवरी 1917 में मुख्यतः मेहनतकशों की ताकत के बल पर उसने राज्यसत्ता पर कब्जा भी जमा लिया था लेकिन उसे कतई यह अनुमान नहीं था कि कुछ ही महीनों के बाद बोल्शेविक वहाँ सत्ता पर कब्जा भी कर सकते हैं। प्रमुख साम्राज्यवादी देशों के आपसी युद्ध में उलझे होने का लाभ भी सोवियत क्रान्ति को मिला। इस रूप में अक्टूबर क्रान्ति विशिष्ट परिस्थितियों में हुई एक विशिष्ट क्रान्ति थी।

आज खासकर तीसरी दुनिया के उन देशों में एक नये प्रकार की समाजवादी क्रान्ति की परिस्थितियाँ पैदा हुई हैं, जिनकी उत्पादक शक्तियाँ अपेक्षाकृत अधिक उन्नत हैं। बुनियादी उद्योग काफी विकसित हो चुके हैं और कृषि अर्थव्यवस्था अपेक्षाकृत अधिक सुदृढ़ है। इन देशों में भारत भी है। ब्राजील, अर्जेण्टीना, मेक्सिको, चीले, मिस्र, इंडोनेशिया, मलेशिया, दक्षिण अफ्रीका जैसे देश इनमें अग्रिम पंक्ति में हैं। इन देशों में होने वाली साम्राज्यवाद विरोधी-पूँजीवाद विरोधी क्रान्तियाँ उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में यूरोप के देशों में सम्भावित क्रान्तियों से भी भिन्न होंगी।

भारत जैसे देश का उदाहरण लें, जहाँ आज सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी पचास करोड़ से भी अधिक हो चुकी है। आज भी हमारे देश में आबादी का लगभग साठ प्रतिशत गाँवों में बसता है लेकिन गाँवों में भी पूँजीवादी उपक्रमों का तेजी से फैलाव हो रहा है और खेती मुख्यतः पूँजीवादी खेती बन चुकी है। ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे-छोटे उद्योगों के अलावा एग्री-बिजनेस का तेजी से प्रसार हो रहा है जिनमें ग्रामीण सर्वहारा की बड़ी आबादी लगी है। भारत के देहात में पूँजी का फैलाव रूस में क्रान्ति के समय से कई गुना अधिक हो चुका है। ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों की ओर प्रव्रजन और किसानों के विभेदीकरण की रफ्तार बेहद तेज है। शहरीकरण अभूतपूर्व गति से बढ़ रहा है। बड़े शहरों के इर्द-गिर्द औद्योगिक बस्तियों के फैलाव के अलावा छोटे शहरों के बड़े शहर बनने और कस्बों तथा ग्रामीण बाजारों के शहर बनने की प्रक्रिया लगातार जारी है। देश के तटवर्ती इलाकों और कच्चे माल से समृद्ध इलाकों में नये औद्योगिक नगर उग आये हैं। सैकड़ों की संख्या में बन रहे एसईजेड इस प्रक्रिया को और तेज, और बड़ा बनायेंगे। आज से दो दशक आगे के भारत की कल्पना करें तो तस्वीर एकदम अलग दिखायी देती है। ब्राजील सहित लातिनी अमेरिका के कई देशों में तो आधी से अधिक आबादी शहरी हो चुकी है। औद्योगिक अर्थव्यवस्था से ग्रामीण अर्थव्यवस्था बहुत पीछे छूट चुकी है। अक्टूबर क्रान्ति में हिस्सा लेने वाले सर्वहारा वर्ग की तादाद से कई गुना अधिक सर्वहारा आज इन देशों में क्रान्ति की कतारों में शामिल होने के लिए मौजूद है। शहरी और ग्रामीण सर्वहारा, छोटे-मोटे रोजी-रोजगार करने वाले अर्द्धसर्वहाराओं की भारी आबादी और गरीब किसान आबादी आज इन देशों की बहुसंख्यक आबादी बन चुकी है।

किसान प्रश्न आज भी उपस्थित है। क्रान्ति की कोतल सेना (रिजर्व आर्मी) आज भी किसान ही होंगे, लेकिन आज केवल निम्न मध्यम किसान तक ही क्रान्ति के साथ खड़े हो सकते हैं। खुशहाल मध्यम किसान तक आज समाजवाद के नारे के पक्ष में नहीं खड़े होने वाले। यह कहा जा सकता है कि कृषि प्रश्न के समाधान का फ्रेमवर्क अब अल्पकालिक अवधि के लिए भी बुर्जुआ जनवादी नहीं हो सकता। उसका समाधान केवल समाजवादी क्रान्ति के फ्रेमवर्क में ही हो सकता है। तीसरी दुनिया के शासक वर्ग साम्राज्यवाद के साथ लूट के माल में अपनी हिस्सेदारी बढ़ाने के लिए दबाव डालने के लिए सौदेबाजी में पलड़ा अपनी ओर झुकाने के लिए जनता के आन्दोलनों को बटखरे की तरह इस्तेमाल करते हैं। साम्राज्यवादी शोषण के विरुद्ध राष्ट्रीय मुक्ति का नारा देने वाले लोग आज ऐसे ही बटखरे के रूप में इस्तेमाल हो रहे हैं, क्योंकि पूँजीपति वर्ग का कोई भी हिस्सा साम्राज्यवाद- विरोधी क्रान्तिकारी संघर्ष का आज भागीदार नहीं हो सकता। देशी पूँजी की सत्ता के विरुद्ध लड़ते हुए ही आज साम्राज्यवाद के विरुद्ध लड़ा जा सकता है। आज कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों के अनेक धड़े, जो लाभकारी मूल्यों के लिए और लागत मूल्यों में कमी के लिए धनी किसानों और खुशहाल मध्यम किसानों के आन्दोलनों में अपनी ताकत लगा रहे हैं वे भी ऐसे ही बटखरों का काम कर रहे हैं।

यह नयी समाजवादी क्रान्तियों का दौर है

आज की नयी क्रान्तियों का मार्ग भी पहले की क्रान्तियों से भिन्न होगा। यह दीर्घकालिक लोकयुद्ध जैसा तो नहीं ही हो सकता, लेकिन यह अक्टूबर क्रान्ति जैसा भी नहीं हो सकता है। बुर्जुआ सत्ता ने न केवल देश के सुदूर इलाकों तक अपने सामाजिक आधारों का विस्तार किया है बल्कि उसकी सामरिक शक्ति, तकनीक और रणकौशल भी बहुत अधिक विकसित हो चुके हैं। पूरे देश को प्रशासनिक तंत्र और यातायात-संचार के साधनों से बाँध दिया गया है। नाना प्रकार की वित्तीय-व्यापारिक संस्थाओं के जरिये पूँजी की जकड़बन्दी से देश का शायद ही कोई हिस्सा अछूता रह गया है। लेनिनकालीन देशों के मुकाबले आज की पूँजीवादी सत्ता ने गाँवों में अपने सामाजिक अवलम्बों का अत्यन्त योजनाबद्ध ढंग से विस्तार किया है। मजदूरों के बीच से एक कुलीन संस्तर तीसरी दुनिया के अपेक्षाकृत उन्नत देशों में भी विकसित हुआ है। हालाँकि उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों ने इसके एक हिस्से पर चोट की है लेकिन एक बड़ा हिस्सा अभी भी मजदूर वर्ग के गद्दारों के सामाजिक आधार का काम कर रहा है। मध्यवर्ग के एक बहुत बड़े हिस्से को गरीब जनता से लूटे गये मुनाफे के टुकड़े बाँटकर व्यवस्था का पैरोकार बना लिया गया है। शहरी मध्यवर्गीय आबादी का भी एक बड़ा हिस्सा आज पूरी तरह इस व्यवस्था के पक्ष में खड़ा है।

आज भी किसी बुर्जुआ सत्ता को आम बगावत के जरिये ही चकनाचूर किया जा सकता है, लेकिन उस निर्णायक मुकाम तक पहुँचने की प्रक्रिया दीर्घकालिक होगी। पूँजी और श्रम के बीच मोर्चा बाँधकर लड़ाई (पोजीशनल वार) का लम्बा सिलसिला चलेगा जिसमें कई बार सर्वहारा की ताकतों को आगे बढ़कर पीछे हटना पड़ सकता है। उन्हें विभिन्न रचनात्मक तरीकों से समाज में अपनी जड़ें गहरे जमानी होंगी। नेपाल जैसी क्रान्ति आज एक अपवाद है। यह वस्तुतः बीसवीं सदी की क्रान्ति है, विश्व सर्वहारा क्रान्ति का बैकलॉग है। यह इक्कीसवीं सदी की पथप्रदर्शक क्रान्ति नहीं हो सकती। इन्हीं भिन्नताओं के आधार पर आज हम कहते हैं कि यह एक नया दौर है। नयी समाजवादी क्रान्तियों का दौर है। ये क्रान्तियाँ विचारधारा, राजनीति, अर्थव्यवस्था, समाजवादी संक्रमण की प्रकृति विषयक चिन्तन, पार्टी सिद्धान्त जैसे सभी पक्षों को समृद्ध करते हुए आगे विकसित होंगी। ये क्रान्ति के विज्ञान को और समृद्ध बनायेंगी, क्रान्ति के शस्त्रागार में नये इजाफे करेंगी। मार्क्सवाद कोई जड़सूत्र नहीं बल्कि कर्मों का मार्गदर्शक विज्ञान है। उन्नत धरातल का व्यवहार सिद्धान्त को भी उन्नति की अगली ऊँचाइयों पर ले जायगा।

एक नये सर्वहारा नवजागरण और नये सर्वहारा प्रबोधन के कार्यभारों को पूरा करना होगा

आज पूरी दुनिया की मेहनतकश जनता के सामने विचारधारा और इतिहासबोध का प्रश्न एक अहम प्रश्न है। बुर्जुआ मीडिया का प्रचारतंत्र दिनो-रात समाजवाद के बारे में झूठ का अम्बार खड़ा करने में जुटा हुआ है। हमारे महानायकों के बारे में घिनौना कुत्सा-प्रचार लगातार जारी रहता है। 1976 के बाद के दिनों में सयानी हुई नयी पीढ़ियों को सर्वहारा क्रान्तियों के गौरवशाली अतीत, क्रान्तिकारियों के विराट व्यक्तित्व और कुर्बानियों और समाजवाद की महान उपलब्धियों के बारे में बहुत कम जानकारी है। ऐसे में आज के क्रान्तिकारियों के सामने यह एक अहम कार्यभार है कि मेहनतकश जनता को और खासकर युवा आबादी को महान क्रान्तिकारी इतिहास और उपलब्धियों से परिचित कराया जाय। मेहनतकश जनता के युवा सपूतों को पहले तो यही बताना होगा कि मार्क्सवाद के सिद्धान्त कहते क्या हैं। उन्हें यह बताना होगा कि उनके पूर्वजों ने किस तरह इन सिद्धान्तों के मार्गदर्शन में महान सामाजिक प्रयोगों को अमल में उतारा और विज्ञान को नयी समृद्धि दी। उन्हें समाजवाद के दौर में हुई अभूतपूर्व प्रगति के बारे में बताने की जरूरत है जिसे देखकर पूँजीवादी दुनिया को दाँतो तले उँगली दबानी पड़ गयी थी। कुछ ही वर्षों में समाजवाद ने आम जनता को अभावों और अपमान की बेड़ियों से आजाद कर जीवन की तमाम बुनियादी जरूरतें उपलब्ध करा दी थीं। समाजवाद ने जनता को केवल भौतिक ही नहीं वह सांस्कृतिक और आत्मिक सम्पदा भी प्रदान की जिससे शोषक वर्गों ने उसे वंचित कर रखा था। उन्हें बताना होगा कि जब जनता की सर्जनात्मकता निर्बन्ध हुई तो उसने कैसे चमत्कार कर दिखाये। मानवता के इतिहास में पहली बार स्त्रियाँ चूल्हे-चौखट की गुलामी से आजाद हुईं और एक नये समाज के निर्माण के लिए पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलीं। समाजवाद की शानदार और महान उपलब्धियों के ठोस आँकड़े मौजूद हैं जिन्हें खुद बुर्जुआ अर्थशास्त्रियों, इतिहासकारों और राजनेताओं ने स्वीकारा है। लेकिन आज इन सबको झूठ के पर्दे के पीछे धकेल दिया गया है। उन ऐतिहासिक घटनाओं, [illegible] और उपलब्धियों को भ[illegible] इनके प्रभाव में अ[illegible]नपंथी बुद्धिजीवी तक बीसवीं सदी को .वफलता की सदी कहते हुए मिल जायेंगे। हमें अपने इस गौरवशाली अतीत की सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों उपलब्धियों को लोगों के सामने लाना होगा।

इसीलिए आज हम नये सर्वहारा नवजागरण की बात करते हैं। इसका अर्थ अतीत को दोहराना नहीं है, लेकिन अतीत को जाने बिना आगे बढ़ना भी मुश्किल है। आज सर्वहारा वर्ग की हरावल शक्तियों के सामने यह एक अहम कार्यभार है। आज दुनिया में ऐसा कोई देश नहीं है जो सर्वहारा क्रान्ति का आधारक्षेत्र हो, जिसकी ओर दुनिया की जनता दिशा और प्रेरणा के लिए देख सकती हो। आज मार्क्स-एंगेल्स-लेनिन-स्तालिन-माओ जैसा कोई सर्वमान्य अन्तरराष्ट्रीय नेता नहीं है। क्रान्ति की शक्तियाँ बेहद बिखरी हुई और कमजोर हैं। ऐसे में यह काम बेहद कठिन है। लेकिन इसकी कतई अनदेखी नहीं की जा सकती। इसीलिए हम पुरजोर ऊँची आवाज में नये सर्वहारा नवजागरण का नारा बुलन्द करते हैं। लेकिन जैसा कि

(पेज 11 पर जारी)

जीतों के दिन की शान में गीत

बुर्जुआ सरकार के हेडक्वाटर शीत प्रासाद पर धावा बोलते क्रान्तिकारी दस्ते

नागरिको!
आज "भूतपूर्व कालों" के हज़ारों वर्ष ध्वस्त हो चुके हैं
आज फिर से जाँच-परख की जा रही है दुनियाओं की बुनियाद की।
आज
हम ज़िन्दगी को बदल डालेंगे अपने पोशाक के आखिरी बटन तक
एकदम नई।

नागरिको!
यह पहला दिन है मजदूरों के प्रलय-प्रवाह का।

हम आ रहे हैं
इस अस्त-व्यस्त दुनिया का उद्धार करने
भीड़ को प्रकम्पित करने दो अपने पैरों की धमक से आकाशों को
क्रोधोन्माद में शामिल हो जाने दो जहाजी बेड़ों के भोंपुओं की आवाज।

–व्लादीमिर मयाकोव्स्की

लेनिन

(कविता का एक अंश)

लेनिन की अगुआई में, जल प्लावन ने रूस में
तोड़ दिया है बाँध, जुल्म और अन्याय का।

धरती पर अन्याय का जो बाँध था
तोड़ डाला, टुकड़े-टुकड़े कर दिया, उसको लेनिन ने
दमन, शोषण के खिलाफ़, विरोध की आवाज़ उठाई लेनिन ने
मौत का सागर नहीं अब, अब हवाओं में फहराता है झण्डा बुलन्द।
मुक्ति के तट हैं बहुत करीब, हवाएँ झूला झुलातीं घास को।

आज हैं लेनिन रक्त में मेरे
और दुर्बलता मुझे छू नहीं सकती
विद्रोह हिलोरें ले रहा है मेरे हृदय में
लगता है जैसे
आज मैं खुद ही लेनिन हूँ।

– सुकान्त भट्टाचार्य

पेत्रोग्राद में मार्च करते मजदूरों और क्रान्तिकारी सैनिकों के दस्ते

लेनिन की कविता

...पैरों से रौंदे गये आजादी के फूल
आज नष्ट हो गये हैं
अँधेरे के स्वामी
रोशनी की दुनिया का ख़ौफ़ देख
खुश हैं
मगर उस फूल के फल ने
पनाह ली है जन्म देने वाली मिट्टी में,
माँ के गर्भ में,
आँखों से ओझल गहरे रहस्य में
विचित्र उस कण ने अपने को जिला रखा है
मिट्टी उसे ताकत देगी, मिट्टी उसे गर्मी देगी
उगेगा वह एक नया जन्म लेकर
एक नई आज़ादी का बीज वह लायेगा
फाड़ डालेगा बर्फ की चादर वह विशाल वृक्ष
लाल पत्तों को फैलाकर वह उठेगा
दुनिया को रौशन करेगा
सारी दुनिया को, जनता को
अपनी छांह में इकट्ठा करेगा।

(लेनिन ने अपनी यह एकमात्र कविता 1905 की क्रान्ति के कुचल दिये जाने के बाद लिखी थी जब बहुत से लोगों को ऐसा लग रहा था कि क्रान्ति की शक्तियों को हमेशा के लिए कुचल डाला गया है। कुछ ही वर्षों में लेनिन की भविष्यवाणी सच साबित हुई)

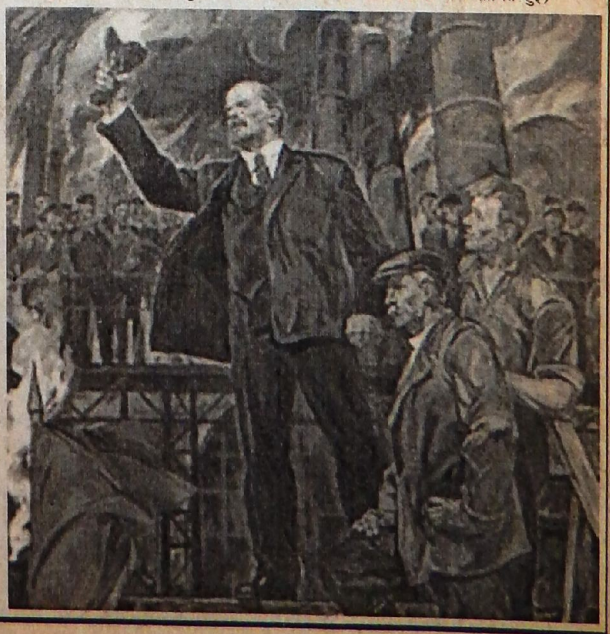

अक्टूबर क्रान्ति : कुछ कविताएँ

पीटर्सबर्ग में ज़ार की विशाल मूर्ति को ढहाते हुए मज़दूर

उन्नीस सौ सत्रह, सात नवम्बर

मर रहा है रूसी साम्राज्य
शीत प्रसाद में सुनाई नहीं देती लहँगों की रेशमी सरसराहट
और न ही ज़ार की ईस्टर की प्रार्थनाएँ
न ही साइबेरिया की ओर जाती सड़कों पर ज़ंजीरों का क्रन्दन...
मर रहा है, रूसी साम्राज्य मर रहा है...

अब और नहीं भीगेंगी पोमेचिकों की पीली मूँछें
वोद्का के गिलासों में
भूख से मरते मुझीकों की ताँबई दाढ़ियाँ
अब और नहीं जलेंगी
काली मिट्टी पर चुल्लू भर रक्त की तरह
और आज
मौत
जो बढ़ रही है रूसी साम्राज्य की ओर
नहीं है उसका पीला सिर
पाँचा नहीं बल्कि
उसके हाथों में है एक ओजस्वी लाल झण्डा
और उसके गालों पर युवापन की रक्ताभा

उन्नीस सौ सत्रह
सात नवम्बर
अपने धीर-मन्द्र स्वर में
लेनिन ने कहा :
"कल बहुत जल्दी होता और कल बहुत देर हो चुकी रहेगी,
समय है आज।"
मोर्चे से आते हुए सैनिक ने
कहा, "आज!"
खन्दक जिसने मार डाला था भूख से मौत को, उसने
कहा, "आज!"
अपनी भारी, इस्पाती काली
तोपों से, अव्रोरा ने
कहा, "आज!"
कहा, "आज!"
और यूँ दर्ज़ की बोल्शेविकी ने इतिहास में
इतिहास के सर्वाधिक गम्भीर मोड़ बिन्दु की तारीख :
उन्नीस सौ सत्रह
सात नवम्बर।

– नाज़िम हिकमत (1925)

7 नवम्बर : जीतों के दिन की शान में गीत

(1941 में लिखी गयी लम्बी कविता का एक अंश)

इस मुबारक दिन तुम्हें शुभकामनाएँ देता हूँ सोवियत संघ,
विनम्रता के साथ। मैं एक लेखक और कवि हूँ।
मेरे पिता रेल मज़दूर थे। हम हमेशा ग़रीब रहे।
कल मैं तुम्हारे साथ था, बहुत दूर भारी बारिशों वाले अपने
छोटे से देश में। वहाँ तुम्हारा नाम लोगों के दिलों में
जलते-जलते सुर्ख हो गया
जब तक वह मेरे देश के ऊँचे आकाश को छूने नहीं लगा।

आज मैं उन्हें याद करता हूँ, वे सब तुम्हारे साथ हैं।
फैक्ट्री दर फैक्ट्री, घर दर घर,
तुम्हारा नाम उड़ता है लाल चिड़िया की तरह।
तुम्हारे वीर यशस्वी हों, और तुम्हारे खून की
हरेक बूँद। यशस्वी हो हृदयों की बह-बह निकलती बाढ़
जो तुम्हारे पवित्र और गौरवपूर्ण आवास की रक्षा करते हैं।

यशस्वी हो वह बहादुरी भरी और कड़ी रोटी,
जो तुम्हारा पोषण करती है जबकि वक़्त के द्वार खुलते हैं।

ताकि जनता और लोहे की तुम्हारी फौज गाते हुए राख़ और
उजाड़ मैदानों के बीच से
हत्यारों के खिलाफ कर सके मार्च ताकि
चाँद जितना विशाल एक गुलाब
रोप सके जीत की सुन्दर और पवित्र भूमि पर।

– पाब्लो नेरूदा

लेनिन के नेतृत्व में मजदूर बढ़ चले अपना राज कायम करने की ओर, कोई ताकत उनका रास्ता नहीं रोक सकती थी।

फ्रेडरिक एंगेल्स के जन्मदिवस (28 नवम्बर) के अवसर पर

फ्रेडरिक एंगेल्स

● लेनिन

तर्कणा की वह मशाल,
नहीं जो अब प्रज्ज्वलित है!
कैसा अद्भुत हृदय,
नहीं जो अब स्पन्दित है!"

5 अगस्त (पुराने कैलेण्डर से 24 जुलाई), 1895 को लन्दन में फ्रेडरिक एंगेल्स का देहान्त हुआ। अपने मित्र कार्ल मार्क्स (जिनका देहान्त 1883 में हुआ था) के बाद एंगेल्स ही समूचे सभ्य संसार के आधुनिक सर्वहारा के सबसे विख्यात पण्डित और शिक्षक थे। जब से भाग्य ने कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स को एक सूत्र में बाँधा, तब से ही इन दोनों मित्रों का जीवन-कार्य एक ही समान ध्येय को अर्पित रहा। अतः फ्रेडरिक एंगेल्स ने सर्वहारा के लिए क्या किया, यह समझने के लिए समकालीन मजदूर आन्दोलन के विकास में मार्क्स की शिक्षा और कार्य के महत्व को स्पष्ट रूप से समझना आवश्यक है। सबसे पहले मार्क्स और एंगेल्स ने ही दिखाया कि मज़दूर वर्ग और उसकी माँगें वर्तमान अर्थव्यवस्था का एक अनिवार्य परिणाम हैं, जो बुर्जुआ वर्ग के साथ-साथ अनिवार्य रूप से सर्वहारा को जन्म देती है और उसे संगठित करती है। उन्होंने दिखा दिया कि आज मानवजाति को उसे उत्पीड़ित करने वाली बुराइयों के चंगुल से मुक्त करने का कार्य कुछ उदारचित्त व्यक्तियों के नेक प्रयत्नों से नहीं, बल्कि संगठित सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष से सम्पन्न होगा। अपनी वैज्ञानिक रचनाओं में सबसे पहले मार्क्स और एंगेल्स ने ही स्पष्ट किया कि समाजवाद कोई स्वप्नदर्शियों की कल्पना नहीं है, बल्कि आधुनिक समाज की उत्पादक शक्तियों के विकास का चरम लक्ष्य और अनिवार्य परिणाम है। आज तक का समूचा लिखित इतिहास वर्ग-संघर्ष का, किन्हीं सामाजिक वर्गों द्वारा दूसरे वर्गों पर प्रभुत्व और विजय के सिलसिले का इतिहास रहा है। और यह तब तक जारी रहेगा, अब तक वर्ग-संघर्ष और वर्ग-प्रभुत्व की बुनियादी—निजी सम्पत्ति और सामाजिक उत्पादन की अराजकता—का लोप नहीं हो जायेगा। सर्वहारा के हितों की दृष्टि से इन बुनियादों का नाश होना आवश्यक है और इसलिए संगठित मजदूरों के सचेतन वर्ग-संघर्ष का रुख इन बुनियादों के विरुद्ध मोड़ देना चाहिए। और हर वर्ग-संघर्ष एक राजनीतिक संघर्ष होता है।

मार्क्स और एंगेल्स के ये विचार अब अपनी मुक्ति के लिए संघर्षरत सभी सर्वहाराओं ने अंगीकार कर लिये हैं। पर जब 19वीं शताब्दी के पाँचवें दशक में इन दोनों मित्रों ने अपने समय के समाजवादी साहित्य-सृजन और सामाजिक आन्दोलनों में भाग लिया, उस समय ये मत पूर्णतया नवीन थे। उस समय बहुत-से ऐसे लोग थे, जो राजनीतिक स्वतंत्रता के संघर्ष में, राजा-महाराजाओं, पुलिस और पादरियों की स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध संघर्ष में इस तरह लीन थे कि वे बुर्जुआ वर्ग के हितों और सर्वहारा के हितों के वैपरीत्य को न देख पाये। इनमें प्रतिभाशाली लोग थे और प्रतिभाहीन भी, ईमानदार लोग थे और बेईमान भी। ये लोग इस विचार को ग्रहण करने के लिए तैयार न थे कि मज़दूर एक स्वतंत्र सामाजिक शक्ति के रूप में काम करें। दूसरी ओर, कितने ही ऐसे स्वप्नदर्शी थे, और इनमें से कुछ प्रतिभाशाली भी थे, जो मानते थे कि बस, शासकों और प्रभुत्वसम्पन्न वर्गों को समकालीन समाज-व्यवस्था के अन्यायपूर्ण होने के बारे में विश्वास दिलाने भर की ज़रूरत है, फिर धरती पर शान्ति और आम खुशहाली की स्थापना करना बायें हाथ का खेल हो जायेगा। वे बिना संघर्ष के समाजवाद के स्वप्न देखा करते थे। अन्ततः उस समय के लगभग सभी समाजवादी और मज़दूर वर्ग के मित्र सर्वहारा को समाज का फोड़ा मानते थे और भयग्रस्त होकर देखते थे कि उद्योग की वृद्धि के साथ-साथ यह फोड़ा भी कैसे बढ़ता जा रहा था। अतः वे सब इस बात पर विचार कर रहे थे कि उद्योग का और सर्वहारा का विकास कैसे रोका जाये, "इतिहास का चक्र" कैसे रोका जाये। सर्वहारा के विकास से आम भय में भागीदार होना तो दूर रहा, मार्क्स और एंगेल्स उल्टे सर्वहारा की सतत वृद्धि पर अपनी सारी आस लगाये हुए थे। सर्वहाराओं की संख्या जितनी अधिक होगी, क्रान्तिकारी वर्ग के रूप में उनकी शक्ति उतनी ही अधिक होगी और समाजवाद उतना ही समीपतर और सम्भवतर होगा। मार्क्स और एंगेल्स ने मज़दूर वर्ग के लिए जो कुछ किया, उसका वर्णन संक्षेप में इन शब्दों में किया जा सकता है : उन्होंने मज़दूर वर्ग को स्वयं अपने को पहचान लेने और अपने प्रति सचेत होने की शिक्षा दी और स्वप्न-दर्शन के स्थान पर विज्ञान की स्थापना की।

इसीलिए हर मज़दूर को एंगेल्स के नाम और जीवन से परिचित होना चाहिए। यही कारण है कि इस लेख-संग्रह में, जिसका उद्देश्य हमारे अन्य सभी प्रकाशनों की ही तरह रूसी मज़दूरों की वर्ग-चेतना को जागृत करना है, हम आधुनिक सर्वहारा के दो महान शिक्षकों में से एक, फ्रेडरिक एंगेल्स के जीवन और कार्य की रूपरेखा प्रस्तुत करना आवश्यक मानते हैं।

एंगेल्स का जन्म 1820 में प्रशा राज्य के राइन प्रान्त में स्थित बार्मेन नगर में हुआ था। उनके पिता कारखानेदार थे। पारिवारिक परिस्थितियों के कारण 1838 में एंगेल्स को स्कूली शिक्षा पूरी किये बिना ही ब्रेमेन की एक व्यापारिक कोठी में क्लर्क की नौकरी करनी पड़ी। पर एंगेल्स की वैज्ञानिक और राजनीतिक शिक्षा जारी ही रही, उसमें व्यापारिक कार्य कोई बाधा न डाल सके। जब वह स्कूल में पढ़ रहे थे, उसी समय से वह निरंकुश शासन और अधिकारियों के अत्याचारों से घृणा करने लगे थे। दर्शन का अध्ययन उन्हें और आगे ले गया। उन दिनों जर्मन दर्शन पर हेगेल का मत छाया हुआ था और एंगेल्स उनके अनुयायी बन गये। यद्यपि स्वयं हेगेल निरंकुश प्रशियाई राज्य के प्रशंसक थे और बर्लिन विश्वविद्यालय के एक प्रोफ़ेसर के नाते उसकी सेवा कर रहे थे, फिर भी उनका सिद्धान्त क्रान्तिकारी था। बर्लिन के इस दार्शनिक के जो शिष्य वर्तमान परिस्थिति को स्वीकार करने से इनकार करते थे, उन्हें मनुष्य की तर्कबुद्धि और उसके अधिकारों में हेगेल का विश्वास और हेगेलवादी दर्शन की यह आधारभूत प्रस्थापना कि विश्व परिवर्तन और विकास की सतत प्रक्रिया में है, इस विचार की ओर अग्रसर कर रही थी कि इस परिस्थिति के विरुद्ध संघर्ष की, वर्तमान अन्याय और फैली हुई बुराई के विरुद्ध संघर्ष की जड़ भी अनन्त विकास के इस सर्वव्यापी नियम में है। यदि संसार की प्रत्येक वस्तु विकसित होती है, यदि एक प्रकार की संस्था की जगह दूसरे प्रकार की संस्था ले लेती है, तो क्या कारण है कि प्रशियाई राज या रूसी ज़ार की निरंकुशता, विशाल बहुसंख्या को हानि पहुँचाकर नगण्य अल्पसंख्या की समृद्धि या जनता पर बुर्जुआ वर्ग का प्रभुत्व सदैव बना रहे? हेगेल के दर्शन ने आत्मा और विचारों के विकास की बात की, यह भाववादी दर्शन था। आत्मा के विकास के परिणाम के रूप में उसने प्रकृति के और मानवीय, सामाजिक सम्बन्धों में मनुष्य के विकास को ग्रहण किया। हेगेल के विकास की अनन्त प्रक्रिया" विषयक विचार प्रस्तुत कर मार्क्स और एंगेल्स ने पूर्वचिन्तित भाववादी दृष्टिकोण अस्वीकार किया; जीवन के तथ्यों की ओर मुड़कर उन्होंने अवलोकन किया कि आत्मा के विकास से प्रकृति का विकास समझा नहीं जा सकता, बल्कि इसके विपरीत आत्मा को प्रकृति के ज़रिये, भूत के ज़रिये ही समझा जा सकता है... हेगेल और अन्य हेगेलवादियों के विपरीत मार्क्स और एंगेल्स भौतिकवादी थे। संसार और मानवजाति को भौतिकवादी दृष्टिकोण से देखकर उन्होंने अनुभव किया कि जिस प्रकार प्रकृति के सभी व्यापारों के मूल में भौतिक कारण रहते हैं, उसी प्रकार मानव समाज का विकास भी भौतिक शक्तियों, उत्पादक शक्तियों के विकास द्वारा निर्धारित होता है। मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपेक्षित वस्तुओं के उत्पादन में मनुष्यों के बीच जो परस्पर सम्बन्ध स्थापित होते हैं, वे उत्पादक शक्तियों के विकास पर ही निर्भर करते हैं। और इन सम्बन्धों में ही समाजिक जीवन के सभी व्यापारों, मानवीय आकांक्षाओं, विचारों और नियमों की व्याख्या निहित होती है। उत्पादक शक्तियों का विकास निजी सम्पत्ति पर आधारित सामाजिक सम्बन्धों को जन्म देता है, पर अब हम जानते हैं कि उत्पादक शक्तियों का यही विकास बहुसंख्या को उसकी सम्पत्ति से वंचित कर देता है और उसे नगण्य अल्पसंख्या के हाथों में केन्द्रित कर देता है। वह सम्पत्ति को, अर्थात आधुनिक समाजिक व्यवस्था के आधार को नष्ट कर देता है, वह स्वयं ही उसी लक्ष्य की ओर बढ़ता है, जिसे समाजवादी अपने सामने रखे हुए हैं। समाजवादियों के लिए बस समझने के वास्ते रह जाता है कि कौन-सी सामाजिक शक्ति वर्तमान समाज में अपनी स्थिति के कारण समाजवाद की स्थापना में दिलचस्पी रखती है, और यह समझकर उन्हें इस शक्ति को उसके हितों और उसके ऐतिहासिक मिशन की चेतना प्रदान करना है। यह शक्ति है सर्वहारा। सर्वहारा से एंगेल्स का परिचय इंग्लैण्ड में, ब्रिटिश उद्योग के केन्द्र मैन्चेस्टर में हुआ, जहाँ वह एक व्यापारिक कम्पनी की नौकरी शुरू करके 1842 में बस गये थे। उनके पिता इस कम्पनी के एक हिस्सेदार थे। यहाँ एंगेल्स केवल फ़ैक्टरी के दफ़्तर में नहीं बैठे रहे, उन्होंने उन गन्दी बस्तियों के चक्कर भी लगाये, जहाँ मज़दूर दरबों की सी जगहों में रहते थे। उन्होंने अपनी आँखों से उनकी दरिद्रता और दयनीय दशा देखी। पर वे केवल वैयक्तिक अवलोकनों तक सीमित नहीं रहे। ब्रिटिश मज़दूर वर्ग की स्थिति के सम्बन्ध में जो भी सामग्री प्रकाश में आयी थी, उन्होंने उसे समग्रतः पढ़ डाला और जो भी सरकारी काग़जात उपलब्ध हो सके, उन्होंने उन सब का ध्यान से अध्ययन किया। इन अध्ययनों और अवलोकनों का फल था 1845 में प्रकाशित 'इंग्लैण्ड में मज़दूर वर्ग की दशा' नामक पुस्तक। 'इंग्लैण्ड में मज़दूर वर्ग की दशा' के लेखक के नाते एंगेल्स ने जो मुख्य सेवा की, उसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। एंगेल्स से पहले भी कितने ही लोगों ने सर्वहारा के कष्टों का वर्णन और उसकी सहायता की आवश्यकता की ओर संकेत किया था। पर एंगेल्स की वह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने कहा कि सर्वहारा न केवल कष्टग्रस्त वर्ग है, अपितु वस्तुतः सर्वहारा की लज्जाजनक आर्थिक स्थिति ही वह चीज़ है, जो उसे सतत आगे बढ़ा रही है और उसे अपनी पूर्ण मुक्ति के लिए लड़ने को विवश कर रही है। और संघर्षरत सर्वहारा स्वयं अपनी सहायता कर लेगा। मज़दूर वर्ग का राजनीतिक आन्दोलन अनिवार्य रूप से मज़दूरों को यह अनुभव करायेगा कि उनकी मुक्ति एकमात्र समाजवाद में निहित है। दूसरी ओर, समाजवाद तभी एक शक्ति बनेगा, जब वह मज़दूर वर्ग के राजनीतिक संघर्ष का उद्देश्य बन जायेगा। ये हैं इंग्लैण्ड के मज़दूर वर्ग की दशा से सम्बन्धित एंगेल्स की पुस्तक के मुख्य विचार। ये विचार अब सभी विचारशील और संघर्षरत सर्वहाराओं ने अंगीकार कर लिये हैं, पर उस समय वे पूर्णतया नवीन थे। इन विचारों का विवरण एक ऐसी पुस्तक में दिया गया, जो हृदयग्राही शैली में लिखी हुई है और जो ब्रिटिश सर्वहारा की दयनीय दशा के अत्यन्त प्रामाणिक और स्तंभित कर देनेवाले चित्रों से भरपूर है। इस पुस्तक ने पूँजीवाद और बुर्जुआ वर्ग को भयानक अपराधी क़रार दिया और लोगों पर गहरा असर डाला। आधुनिक सर्वहारा की स्थिति का सर्वोत्तम चित्र प्रस्तुत करने वाली पुस्तक के रूप में एंगेल्स की इस रचना का सर्वत्र हवाला दिया जाने लगा। और वस्तुतः न 1845 के पहले और न उसके बाद ही मज़दूर वर्ग की दयनीय दशा का इतना प्रभावोत्पादक और सत्यदर्शी चित्र और कहीं प्रस्तुत हो पाया।

इंग्लैण्ड में आ बसने के बाद ही एंगेल्स समाजवादी बने। मैन्चेस्टर में उन्होंने उस समय के ब्रिटिश मज़दूर आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने वाले लोगों से सम्पर्क स्थापित किया और अंग्रेज़ी समाजवादी प्रकाशनों के लिए लेख लिखना आरम्भ किया। 1844 में जर्मनी लौटते समय पेरिस में मार्क्स से उनका परिचय हुआ। मार्क्स के साथ उनका पत्रव्यवहार इससे पहले ही शुरू हो गया था। पेरिस में फ्रांसीसी समाजवादियों और फ्रांसीसी जीवन के प्रभाव से मार्क्स भी समाजवादी बन गये थे। यहाँ दोनों मित्रों ने मिलकर एक पुस्तक लिखी, जिसका शीर्षक है 'पवित्र परिवार या आलोचनात्मक आलोचना की आलोचना'। यह पुस्तक 'इगलैंड में मज़दूर वर्ग की दशा' के एक वर्ष पहले प्रकाशित हुई और इसका अधिकांश मार्क्स ने लिखा। ऊपर जिस क्रान्तिकारी-भौतिकवादी समाजवाद के मुख्य विचारों की व्याख्या हम कर चुके हैं, उसके आधारभूत सिद्धान्त इस पुस्तक में प्रस्तुत किये गये हैं। 'पवित्र परिवार' दार्शनिक बावेर बन्धुओं और उनके अनुयायियों को दिया गया मज़ाकिया लक़ब है। इन सज्जनों ने ऐसी आलोचना का ढिंढोरा पीटा, जो समूची वास्तविकता के परे है, जो पार्टियों और राजनीति के परे है, जो सारे व्यावहारिक क्रियाकलाप को ठुकरा देती है और जो केवल "आलोचनात्मक ढंग से" चारों ओर के संसार का और उसमें घट रही घटनाओं का अवलोकन करती है। इन सज्जनों ने, अर्थात बावेर बन्धुओं ने सर्वहारा को नीची नज़र से देखते हुए उसे एक आलोचनाशून्य समूह माना। मार्क्स और एंगेलस ने इस बेतुकी और हानिकारक प्रवृत्ति का ज़ोरदार विरोध किया। एक वास्तविक मानवरूपी व्यक्ति—शासक वर्गों और राज्य द्वारा पददलित मज़दूर — के नाम पर उन्होंने अवलोकन की नहीं, बल्कि बेहतर समाज-व्यवस्था के लिए संघर्ष की माँग की। कहने की ज़रूरत नहीं कि उन्होंने सर्वहारा को इस संघर्ष को चलाने में समर्थ और उसमें दिलचस्पी रखने वाली शक्ति माना। 'पवित्र परिवार' के प्रकाशित होने से पहले ही एंगेल्स ने मार्क्स और रूगे की 'जर्मन-फ्रांसीसी पत्रिका' में 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की आलोचना' प्रकाशित की थी, जिसमें उन्होंने समाजवादी दृष्टिकोण से समकालीन आर्थिक व्यवस्था के प्रधान व्यापारों की जाँच की थी और यह निष्कर्ष निकाला था कि वे निजी सम्पत्ति के प्रभुत्व के अनिवार्य परिणाम थे। मार्क्स ने राजनीतिक अर्थशास्त्र का अध्ययन करने का जो निश्चय किया, उसमें असन्दिग्ध रूप से एंगेल्स के साथ उनका सम्पर्क एक कारण था। इस विज्ञान के क्षेत्र में मार्क्स की रचनाओं ने वस्तुतः क्रान्ति कर दी।

1845 से 1847 तक एंगेल्स ब्रसेल्स और पेरिस में रहे और वैज्ञानिक कार्य के साथ-साथ उन्होंने ब्रसेल्स और पेरिस के जर्मन मज़दूरों के बीच अमली कार्रवाइयाँ भी कीं। यहाँ मार्क्स और एंगेल्स ने गुप्त जर्मन 'कम्युनिस्ट लीग' के साथ सम्पर्क स्थापित किया और लीग ने उन्हें उनके द्वारा रचित समाजवाद के मुख्य सिद्धान्तों की व्याख्या करने का कार्य सौंप दिया। इस प्रकार मार्क्स और एंगेल्स के सुप्रसिद्ध 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' का जन्म हुआ। यह 1848 में प्रकाशित हुआ। यह छोटी-सी पुस्तिका अनेकानेक ग्रन्थों का मूल्य रखती है : आज भी उसकी जीवन्त भावना समूचे सभ्य संसार के संगठित और संघर्षरत सर्वहारा को स्फूर्ति और प्रेरणा प्रदान करती है।

1848 की क्रान्ति से, जो पहले फ्रांस में भड़की और फिर पश्चिमी यूरोप के अन्य देशों में फैल गयी, प्रेरित होकर मार्क्स और एंगेल्स फिर से अपनी मातृभूमि वापस आये। यहाँ, राइनी प्रशा में उन्होंने कोलोन से प्रकाशित होनेवाले जनवादी 'नया राइन समाचारपत्र' की बागडोर अपने हाथों में ली। ये दोनों मित्र राइनी प्रशा की सारी क्रान्तिकारी-जनवादी आकांक्षाओं के केन्द्र और स्रोत थे। जनता के हितों और स्वतंत्रता की रक्षा में उन्होंने आखिरी दम तक प्रतिक्रियावादी शक्तियों से लोहा लिया। जैसा कि हम जानते हैं, प्रतिक्रियावादी शक्तियों का पलड़ा भारी पड़ा। 'नया

(पेज 11 पर जारी)

फिर भड़केगी जंगल की आग!

(पेज 7 से आगे)

हम पहले भी कह चुके हैं, भावी क्रान्तियाँ हू-ब-हू अतीत की क्रान्तियों के नक्शे-कदम पर नहीं चलतीं। केवल विगत सर्वहारा क्रान्तियों की उपलब्धियों से परिचित होने मात्र से ही हमारा उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता। हमें अतीत की क्रान्तियों से काफी कुछ लेना होगा। साथ ही, आज की परिस्थितियों का अध्ययन करके नये नतीजे निकालने होंगे और नयी क्रान्ति की रणनीति और आम रणकौशल विकसित करने होंगे। यह प्रक्रिया गहन सामाजिक प्रयोग, उनके सैद्धान्तिक समाहार, वाद-विवाद, विचार-विमर्श और फिर नया क्रान्तियों की प्रकृति, स्वरूप एवं रास्ते से मुक्तिकामी जनता को परिचित कराने की सुदीर्घ प्रक्रिया होगी। इस पहलू के मद्देनजर हम नये सर्वहारा प्रबोधन की बात करते हैं। आज पूरी दुनिया के मूलाधार और अधिरचना में आये व्यापक परिवर्तनों का हमें अध्ययन करना होगा। कहने की जरूरत नहीं कि अध्ययन की यह प्रक्रिया सामाजिक प्रयोगों और सघन वाद-विवाद के जरिये तथा प्रयोगों से निगमित निष्कर्षों के आधार पर आम जनता के बीच व्यापक राजनीतिक प्रचार और फिर नये सामाजिक प्रयोगों की प्रक्रिया के साथ ही चल सकती है। इस पहलू को हम एक नये सर्वहारा प्रबोधन के कार्यभार के रूप में रेखांकित करते हैं। थोड़े में इन दोनों को मिलाकर कहें तो, क्रान्तियों के इतिहास से आवश्यक सबक लेना तथा आज की दुनिया की नयी परिस्थितियों के आधार पर अपने सिद्धान्तों एवं व्यवहार को आगे विस्तार देना। यही नये सर्वहारा नवजागरण और प्रबोधन का ऐतिहासिक सारतत्व है। जाहिरा तौर पर, इसका एक पहलू विचारधारा से जुड़ेगा, एक पहलू राजनीतिक अर्थशास्त्र से जुड़ा होगा, एक पहलू कला-साहित्य-संस्कृति की सैद्धान्तिकी से सम्बन्ध रखेगा, एक पहलू समाजवादी संक्रमण की प्रकृति की समझ से जुड़ा होगा और एक पहलू आज की नयी लेनिनवादी पार्टी की अवधारणा को समृद्धि प्रदान करेगा।

यह अनायास नहीं है कि आज कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर के भीतर से अर्थवादी (यानी वे जो आर्थिक संघर्षों पर जोर देते हुए राजनीतिक संघर्ष को तिलांजलि दे चुके हैं या आर्थिक संघर्षों को ही आगे बढ़ाते हुए राजनीतिक संघर्षों तक ले जाने की सोच रखते हैं); अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी (यानी वे जो मजदूर वर्ग की स्वतःस्फूर्त कार्रवाइयों या जनसंगठनात्मक गतिविधियों से सर्वहारा पार्टी बन जाने का मुगालता पाले हुए हैं); लोकरंजकतावाद की हवा मिठाई बेचने वाले फेरी वाले; तमाम किस्म के नवसंशोधनवादी; कठमुल्लावादी मुदर्रिस और पटवारी और क्रान्ति की कतारों से भागकर घाघरों में शरण लिये हुए नकली चिन्तक – ये सारी जमातें हमारे इन्हीं नारों पर चोट करती हैं। इन्हें वर्ग संघर्ष के कार्यभारों से हटना बताती हैं (उनके लिए वर्ग संघर्ष का मतलब केवल मजदूर वर्ग के आर्थिक संघर्ष ही हैं) और हमारे ऊपर तरह-तरह की तोहमतें मढ़ती हैं।

इन नारों को समझे बिना हम आज के अपने कार्यभारों को सही ढंग से अंजाम नहीं दे सकते। अनायास नहीं है कि तमाम भगोड़े झींगुर अपनी असलियत को छिपाने के लिए इन्हीं नारों के विरुद्ध जरूरत से ज्यादा शोर मचाते हैं।

ये गधे वे नहीं समझ पाते कि नये सर्वहारा प्रबोधन में नयी परिस्थितियों को समझने का जो कार्यभार है वे किताबी कीड़े और चिन्तक का बाना धारण कर लेने वाले बौने विदूषक पूरा नहीं कर सकते। यह प्रक्रिया सामाजिक प्रयोगों के दौरान ही आगे बढ़ सकती है। ये कूपमण्डूक तिलचट्टे यह नहीं समझ पाते कि एक नये सर्वहारा नवजागरण और नये सर्वहारा प्रबोधन के कार्यभारों को तिलस्मों के द्वारा नहीं बल्कि एक क्रान्तिकारी मानव उपादान के द्वारा अंजाम दिया जायेगा और वह क्रान्तिकारी मानव उपादान प्रयोग-सिद्धान्त-प्रयोग की प्रक्रिया में ही तैयार होगा।

तीसरी दुनिया के जिन देशों में आज नयी समाजवादी क्रान्ति की जमीन पक रही है उनमें भारत प्रातिनिधिक स्थिति में है। लेकिन आज यहाँ कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर लगभग विघटित हो चुका है। कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों के भीतर बोल्शेविज़्म के उसूल मुख्यतः क्षरित हो चुके हैं। पुराने संशोधनवादी भाकपा, माकपा, भाकपा (माले-लिबरेशन) तो पहले से ही नंगे हो चुके हैं, पर सबसे घातक संशोधनवादी तो वे हैं जो माओ विचारधारा या माओवाद और महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति की बातें करते हुए अर्थवाद और ट्रेड यूनियनवाद कर रहे हैं, बोल्शेविज़्म के नाम पर मेंशेविक पार्टी ढाँचा चला रहे हैं। एक ओर पुरानी नवजनवादी क्रान्ति की सलीब को ढोते हुए नामधारी मार्क्सवादी रह गये संगठन हैं जो धनी किसानों और कुलकों की माँगों पर आन्दोलन करते हुए वस्तुतः नरोदवादी बन चुके हैं। दूसरी ओर "वामपंथी" जुनून में काम करने वाले संगठन हैं जो कार्यक्रम के धरातल पर नरोदवादी आचरण करते हुए विचारधारा के स्तर पर घनघोर "वामपंथी" दुस्साहसवाद के शिकार हैं। ये मार्क्सवादी विज्ञान से कोसों दूर हैं और अपनी तमाम सदिच्छाओं के बावजूद अपनी जुनूनी हरकतों से मजदूर वर्ग के लक्ष्य को नुकसान ही पहुँचा रहे हैं। यही है आज विघटित हो चुके कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी शिविर की तस्वीर। शिविर का जो विघटन छत्तीस वर्ष पहले शुरू हुआ था, एकता की तमाम गुहारों और कोशिशों के बावजूद आज लगभग पूरा हो चुका है। मूल बात यह है कि अधिकांश कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों की संरचना ही बोल्शेविक नहीं रह गयी है तो फिर इन्हें मिलाने से कोई अखिल भारतीय क्रान्तिकारी पार्टी भला कैसे बन सकती है।

इसीलिए आज नयी बोल्शेविक भर्ती और ट्रेनिंग का काम बेहद अहम बन गया है। पार्टी निर्माण और पार्टी गठन के दो द्वन्द्वात्मक पहलुओं में आज निर्माण का पहलू प्रधान है। नये बोल्शेविक तत्वों की भर्ती और तैयारी किये बिना अखिल भारतीय क्रान्तिकारी पार्टी नहीं खड़ी की जा सकती। इस पहलू को एक नये सर्वहारा नवजागरण और नये सर्वहारा प्रबोधन के पहलू से अलग करके नहीं देखा जा सकता। जब हम नये बोल्शेविक तत्वों की भर्ती की बात करते हैं तो पुरानी कतारों की अनदेखी की बात कोई मूर्ख ही सोच सकता है। अगर हम आम राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई पर बल देते हैं तो कोई गधा यह समझ ले कि हम रोजमर्रा के राजनीतिक संघर्षों में और मेहनतकश अवाम के बीच की जाने वाली जन-कार्रवाइयों की पूरी तरह तिलांजलि दे देते हैं, तो उस गधे को बृहस्पति और शुक्राचार्य भी नहीं समझा सकते। क्योंकि बात समझ की है ही नहीं, बात तो नीयत की है।

आज अक्टूबर क्रान्ति की शिक्षाएँ हमें याद दिलाती हैं कि लेनिन के समय की तरह से आज भी हमें वाम और दक्षिण अवसरवाद के प्रेतों से जूझते हुए, अडिग होकर अपने रास्ते पर आगे बढ़ना होगा।

फ्रेडरिक एंगेल्स

(पेज 10 से आगे)

राइनी समाचारपत्र' बन्द कर दिया गया। मार्क्स को, जो पिछले उत्प्रवासन-काल में अपनी प्रशियाई नागरिकता खो चुके थे, निर्वासित कर दिया गया; एंगेल्स ने सशस्त्र जन-विद्रोह में भाग लिया, स्वतंत्रता के लिए तीन लड़ाइयों में हिस्सा लिया और विद्रोहियों की पराजय के बाद वह स्विट्ज़रलैण्ड से होकर लन्दन चले गये।

मार्क्स भी लन्दन में ही बस गये। एंगेल्स फिर एक बार मैन्चेस्टर की उसी कम्पनी में क्लर्क बन गये, जहाँ वह पाँचवें दशक में काम करते थे। बाद में वह उस कम्पनी के हिस्सेदार बने। 1870 तक वह मैन्चेस्टर में रहे, जबकि मार्क्स लन्दन में रहते थे। फिर भी इससे उनके अत्यन्त स्फूर्तिप्रद विचार-विनिमय के जारी रहने में कोई बाधा न आयी। लगभग हर रोज उनकी चिट्ठी-पत्री चलती थी। इस पत्र-व्यवहार द्वारा मित्रद्वय ने विचारों एवं खोजों का आदान-प्रदान किया और वैज्ञानिक समाजवाद की रचना में सहयोग जारी रखा। 1870 में एंगेल्स लन्दन आ गये और वहाँ उनका संयुक्त बौद्धिक जीवन–कठिन साधना का जीवन–1883 तक, अर्थात् मार्क्स के देहाँत तक चलता रहा। इस साधना का फल मार्क्स की ओर से 'पूँजी' रहा, जो राजनीतिक अर्थशास्त्र पर हमारे युग की सबसे महान रचना है, और एंगेल्स की ओर से कितनी ही छोटी और बड़ी रचनाएँ। मार्क्स ने पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के जटिल व्यापारों के विश्लेषण पर काम किया। एंगेल्स ने सीधी-सादी और अक्सर खण्डन-मण्डनात्मक प्रकार की रचनाओं में अधिक सामान्य वैज्ञानिक समस्याओं और अतीत तथा वर्तमान के विविध व्यापारों का विवेचन इतिहास की भौतिकवादी धारणा और मार्क्स के आर्थिक सिद्धान्त की भावना में किया। एंगेल्स की रचनाओं में से हम इन रचनाओं का उल्लेख करेंगे : ड्यूहरिंग के विरुद्ध खण्डन-मण्डनात्मक रचना (जिसमें दर्शन, प्राकृतिक विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र की अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्यओं का विश्लेषण किया गया है)*, 'परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति' (रूसी में अनूदित, सेंट-पीटर्सबर्ग में प्रकाशित, तृतीय संस्करण, 1895), 'लुडविग फायरबाख' (टिप्पणियों सहित रूसी अनुवाद गे. प्लेखानोव द्वारा, जेनेवा, 1892), रूसी सरकार की विदेश नीति के सम्बन्ध में एक लेख (जेनेवा के 'सोत्सिआल-देमोक्रात' के पहले और दूसरे अंकों में रूसी में अनूदित), आवास की समस्या पर उत्कृष्ट लेख और अन्त में रूस के आर्थिक विकास के सम्बन्ध में दो छोटे, पर अतिमूल्यवान लेख ('रूस के सम्बन्ध में फ्रेडरिक एंगेल्स के विचार', वेरा ज़ुसूलिच द्वारा रूसी में अनूदित, जेनेवा, 1894)। पूँजी से सम्बन्धित विशाल काम पूरा होने से पहले ही मार्क्स का देहान्त हो गया। फिर भी पुस्तक अपने मूल रूप में तैयार हो चुकी थी। अपने मित्र की मृत्यु के बाद एंगेल्स ने 'पूँजी' के द्वितीय और तृतीय खण्डों की प्रकाशनार्थ तैयारी और प्रकाशन का भारी काम अपने कन्धों पर लिया। उन्होंने द्वितीय खण्ड 1885 में और तृतीय खण्ड 1894 में प्रकाशित किया। उनकी मृत्यु के कारण चतुर्थ खण्ड के प्रकाशन में बाधा पड़ी)। उक्त दो खण्डों के प्रकाशन की तैयारी का काम बहुत ही परिश्रमपूर्ण था। आस्ट्रियाई सामाजिक-जनवादी एडलर ने ठीक ही कहा है कि 'पूँजी' के द्वितीय और तृतीय खण्डों के प्रकाशन द्वारा एंगेल्स ने अपने प्रतिभाशाली मित्र का भव्य स्मारक खड़ा किया, जिस पर न चाहते हुए भी उन्होंने अपना नाम अमिट रूप से अंकित कर दिया। वस्तुतः 'पूँजी' के ये दो खण्ड दो व्यक्तियों–मार्क्स और एंगेल्स–की कृति हैं। प्राचीन गाथाओं में मैत्री के कितने ही हृदयस्पर्शी उदाहरण मिलते हैं। यूरोपीय सर्वहारा कह सकता है कि उसके विज्ञान की रचना दो ऐसे विद्वानों और योद्धाओं ने की, जिनके पारस्परिक सम्बन्धों ने मानवीय मैत्री की अत्यन्त हृदयस्पर्शी पुराण-कथाओं को पीछे छोड़ दिया है। एंगेल्स सदा ही–और आम तौर पर न्यायसंगत रूप से–अपने को मार्क्स के बाद रखते थे। "मार्क्स के जीवन-काल में," उन्होंने अपने एक पुराने मित्र को लिखा था, "मैंने गौण भूमिका अदा की।" जीवित मार्क्स के प्रति उनका प्रेम और मृत मार्क्स की स्मृति के प्रति उनका आदर असीम था। इस दृढ़ योद्धा और कठोर विचारक का हृदय गहरे प्रेम से परिपूर्ण था।

1848-1849 के आन्दोलन के बाद निर्वासन-काल में मार्क्स और एंगेल्स केवल वैज्ञानिक शोधकार्य में ही व्यस्त नहीं रहे। 1864 में मार्क्स ने 'अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संघ' की स्थापना की और पूरे दशक भर इस संस्था का नेतृत्व किया। एंगेल्स ने भी इस संस्था के कार्य में सक्रिय भाग लिया। 'अन्तरराष्ट्रीय संघ' का कार्य, जिसने मार्क्स के विचारानुसार सभी देशों के सर्वहारा को एकजुट किया, मज़दूर आन्दोलन के विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण था। पर आठवें दशक में उक्त संघ के बन्द होने के बाद भी मार्क्स और एंगेल्स की एकीकरण विषयक भूमिका समाप्त नहीं हुई। इसके विपरीत कहा जा सकता है कि मज़दूर आन्दोलन के आध्यात्मिक नेताओं के रूप में उनका महत्व सतत बढ़ता रहा, क्योंकि यह आन्दोलन स्वयं भी सतत रूप से प्रगति करता रहा। मार्क्स की मृत्यु के बाद अकेले एंगेल्स यूरोपीय समाजवादियों के परामर्शदाता और नेता बने रहे। उनका परामर्श और मार्गदर्शन जर्मन समाजवादी , जिनकी शक्ति सरकारी यंत्रणाओं के बावजूद शीघ्रता से और सतत बढ़ रही थी, और स्पेन, रूमानिया, रूस, आदि जैसे पिछड़े देशों के प्रतिनिधि, जो अपने पहले कदमें बहुत सोच-विचार कर और सम्भलकर रखने को विवश थे, सभी समान रूप से चाहते थे। वे सब वृद्ध एंगेल्स के ज्ञान और अनुभव के समृद्ध भण्डार से लाभ उठाते थे।

मार्क्स और एंगेल्स दोनों रूसी भाषा जानते थे तथा रूसी पुस्तकें पढ़ा करते थे। रूस में उनकी गहरी दिलचस्पी थी, वे रूसी क्रान्तिकारी आन्दोलन की गतिविधि को सहानुभूति की दृष्टि से देखते थे और रूसी क्रान्तिकारियों से सम्पर्क बनाये हुए थे। समाजवादी बनने से पहले वे दोनों जनवादी थे और राजनीतिक निरंकुशता के प्रति घृणा की जनवादी भावना उनमें बहुत ही बलवती थी। इस प्रत्यक्ष राजनीतिक भावना ने और उसके साथ-साथ राजनीतिक निरंकुशता और आर्थिक उत्पीड़न के बीच के सम्बन्धों की गम्भीर सैद्धान्तिक समझ और जीवन के समृद्ध अनुभव ने मार्क्स और एंगेल्स को यथार्थतः राजनीतिक दृष्टि से असाधारण रूप में संवेदनशील बना दिया था। यही कारण है कि शक्तिशाली ज़ारशाही सरकार के विरुद्ध मुट्ठी भर रूसी क्रान्तिकारियों के वीरत्वपूर्ण संघर्ष ने इन तपे हुए क्रान्तिकारियों के हृदयों में गहरी सहानुभूतिपूर्ण प्रतिक्रिया उत्पन्न की। इसके विपरीत काल्पनिक आर्थिक सुविधाओं की प्राप्ति के लिए रूसी समाजवादियों के सबसे फौरी और सबसे महत्वपूर्ण काम की ओर से, यानी राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने की ओर से मुँह मोड़ लेने की प्रवृत्ति को उन्होंने संशय की दृष्टि से देखा, और इतना ही नहीं, उन्होंने उसे सामाजिक क्रान्ति के महान ध्येय के प्रति सीधे-सीधे विश्वासघात माना। "सर्वहारा की मुक्ति स्वयं सर्वहारा के हाथों सम्पन्न होनी चाहिए," मार्क्स और एंगेल्स बराबर यही सीख देते रहे। पर अपनी आर्थिक मुक्ति के लिए संघर्ष करने के लिए यह ज़रूरी है कि सर्वहारा कुछ राजनीतिक अधिकार प्राप्त कर ले। इसके अलावा मार्क्स और एंगेल्स ने स्पष्ट रूप से देखा कि रूस में राजनीतिक क्रान्ति पश्चिमी यूरोपीय मज़दूर आन्दोलन के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होगी। स्वेच्छाचारी रूस सदा से ही यूरोपीय प्रतिक्रियावाद का स्तम्भ रहा था। एक लम्बे समय तक जर्मनी और फ्रांस के बीच अनबन के बीज बोने वाले 1870 के युद्ध के परिणामस्वरूप रूस को प्राप्त हुई अत्यधिक अनुकूल अन्तरराष्ट्रीय स्थिति ने अवश्य ही प्रतिक्रियावादी शक्ति के रूप में स्वेच्छाचारी रूस का महत्व बढ़ा दिया। केवल स्वतंत्र रूस ही, जिसे न पोलैण्डवासियों, फ़िनलैण्डवासियों, जर्मनों, आर्मीनियाइयों या अन्य छोटी-मोटी जातियों को उत्पीड़ित करने की और न ही फ्रांस और जर्मनी को बराबर एक दूसरे के विरुद्ध उभाड़ने की आवश्यकता होगी, आधुनिक यूरोप को युद्ध के भार से मुक्त होकर चैन की साँस लेने देगा, यूरोप के सभी प्रतिक्रियावादी तत्वों को निर्बल कर देगा और यूरोपीय मज़दूर वर्ग की शक्ति बढ़ा देगा। इसलिए एंगेल्स की उत्कट इच्छा थी कि पश्चिम के मज़दूर आन्दोलन की प्रगति के हित में भी रूस में राजनीतिक स्वतंत्रता की स्थापना हो। एंगेल्स की मृत्यु से रूसी क्रान्तिकारियों ने अपना बेहतरीन दोस्त खो दिया।

महान योद्धा और सर्वहारा शिक्षक फ्रेडरिक एंगेल्स की स्मृति अमर हो!

शरद, 1895 में लिखित। (खण्ड 2, पृष्ठ 5-14)

टिप्पणियाँ :

*महान रूसी कवि नेक्रासोव की कविता की पंक्तियाँ जो उन्होंने प्रखर रूसी लेखक और विचारक दोब्रोल्युबोव के निधन पर लिखी थी।

**मार्क्स और एंगेल्स अक्सर कहा करते थे कि अपने बौद्धिक विकास के लिए वे महान जर्मन दार्शनिकों और विशेषकर हेगेल के ऋणी हैं। एंगेल्स कहते हैं : "जर्मन दर्शन के बिना वैज्ञानिक समाजवाद का आविर्भाव नहीं हो सकता था"।

***यह बहुत सारगर्भित और शिक्षाप्रद पुस्तक है। दुर्भाग्य से उसका एक छोटा-सा हिस्सा ही रूसी भाषा में अनुदित किया गया है। इस हिस्से में समाजवाद के विकास की ऐतिहासिक रूपरेखा दी गयी है ('वैज्ञानिक समाजवाद का विकास', द्वितीय संस्करण, जेनेवा, 1892)।

पंजीयन संख्या - 71980/99, डाक पंजीयन संख्या - LW-NP/349/2006-08

पूँजीवाद के वफादार रखवाले को मिला सेवा का मेवा

मुहम्मद यूनुस को नोबल पुरस्कार

बंगलादेश में ग्रामीण औरतों, मछुआरों और गरीब किसानों को छोटे-छोटे कर्जे बाँटने वाले 'ग्रामीण बैंक' के संस्थापक मुहम्मद यूनुस को इस वर्ष का नोबल शान्ति पुरस्कार दिये जाने की घोषणा से एनजीओ मार्का राजनीति करने वालों और बुर्जुआ मीडिया के बीच भारी उत्साह है। आइए जरा देखते हैं कि यह ग्रामीण बैंक और उसका "सूक्ष्म ऋण" (माइक्रो क्रेडिट) है क्या और यूनुस साहब ने ऐसा क्या किया है कि विश्व पूँजीवाद के आकाओं ने उन्हें खुश होकर नोबल पुरस्कार से नवाजा है।

ग्रामीण बैंक बेहद गरीब महिलाओं के छोटे-छोटे समूहों, गरीब किसानों और छोटे-मोटे रोजी-रोजगार करने वालों को छोटे-छोटे कर्जे देता है जो कुछ सौ से लेकर चन्द एक हजार रुपये तक के होते हैं। इन पर ब्याज की दर थोड़ी कम और किश्तें आसान होती हैं। आम तौर पर बड़े बैंक गरीबों को कर्ज देने से डरते हैं लेकिन यूनुस ने इस बात को पहचान लिया कि कर्ज दबा जाने में तो अमीर ज्यादा आगे होते हैं। गरीबों पर तो सरकार, प्रशासन, अफसरों का खौफ हमेशा छाया रहता है और वे अपना पेट काटकर किसी भी तरह से कर्ज चुका ही देते हैं, चाहे उन्हें इसके लिए फिर कर्ज के जाल में क्यों न उलझना पड़े। यूनुस ने महिलाओं को छोटे-छोटे कर्ज देने से शुरुआत की और जल्दी ही उनका यह प्रयोग चल निकला और विश्व बैंक तथा बंगलादेश सरकार के भरपूर समर्थन से इसे न सिर्फ पूरे बंगलादेश में फैला दिया गया बल्कि तीसरी दुनिया के चालीस देशों में विश्व बैंक की देखरेख में उनका यह मॉडल लागू किया जा रहा है।

विश्व पूँजीवाद की प्रमुख वित्तीय संस्था विश्व बैंक की सूक्ष्म ऋण के इस मॉडल में इतनी दिलचस्पी क्यों? वजह साफ है। पूँजीवादी विकास के साथ ही हर जगह पूँजी अपनी गति से समाज में गरीबों को उजाड़ती है, बहुत बड़े पैमाने पर सामाजिक असन्तोष पैदा करती है। यह असन्तोष उग्र वर्ग संघर्ष के रूप में न भड़क उठे इसके लिए पूँजीवादी व्यवस्था तरह-तरह के सेफ्टी वॉल्व अपनाती है। एक रूप में एनजीओ यह काम करते हैं और दूसरे रूप में इस प्रकार की स्कीमें यही भूमिका निभाती हैं। कृषि में पूँजीवाद के प्रवेश के साथ जितने बड़े पैमाने पर ग्रामीण आबादी अनिवार्यतः विस्थापित होगी वह पूँजीवाद के हित में नहीं है इस बात को राज्यसत्ता बखूबी समझती है। खासकर बंगलादेश जैसे देशों में, जहाँ औद्योगिक विकास अभी इस स्तर तक नहीं पहुँचा है कि गाँवों से विस्थापित आबादी के बहुलांश को उद्योगों में और शहरों में खपा सके। इसलिए जरूरी है कि ग्रामीण आबादी के एक अच्छे-खासे निचले संस्तर को गाँवों में ही बाँधकर रखा जाये। छोटे-छोटे ऋण इन गरीब औरतों या मछुआरों को धनी नहीं बनाते। वे बस उन्हें इतनी राहत मुहैया करते हैं कि वे अपनी जगह पर ही किसी तरह रोजी-रोटी कमाते रहें और उजड़कर शहरों में भीड़ न लगाएँ।

इसके साथ ही, ये सूक्ष्म ऋण और अनेक प्रकार के लघु ऋण बड़ी कुशलता से एक और काम भी करते हैं। ये एक बहुत बड़ी ऐसी आबादी तैयार करते हैं जो सीधे उजरती गुलाम तो नहीं होती पर लेनिन के शब्दों में मालिक होने का भ्रम पाले हुए उजरती गुलाम का काम करती है। उदाहरण के लिए, गाँव में एक या दो गाय-भैंसें रखकर उनका दूध बेचने वाले, या छोटे-छोटे घरेलू उद्योगों में हस्तशिल्प या बाजार में बिकने वाले दूसरे उपभोक्ता सामान तैयार करने वाली महिलाएँ खुद अपने उत्पादन के छोटे-छोटे साधनों का मालिक होने का भ्रम पाले रहती हैं लेकिन वास्तविकता यह है कि वे महज उत्पादन करती हैं, उसके वितरण और विनिमय पर उनका कोई नियंत्रण नहीं होता। प्रायः उन्हें कच्चा माल मुहैया कराने और तैयार माल को बाजार में बेचने वाले बड़े व्यापारी या ठेकेदार होते हैं और अब तो सीधे बड़ी कम्पनियाँ यह काम कर रही हैं। उनके गाय-बैल, करघे, या जमीन के छोटे से टुकड़े का मालिक तो वास्तव में वे बैंक या महाजन होते हैं जिनके कर्जे के बोझ के तले वे लगातार दबे रहते हैं। उनकी पैदा की हुई वस्तुओं से होने वाले मुनाफे का एक छोटा-सा हिस्सा उनको मिल जाता है जो दरअसल मजदूरी से ज्यादा नहीं होता बल्कि कभी-कभी तो उसे भी कम होता है। देखा जाये तो किसी मजदूर को दवा-इलाज, बीमा आदि के रूप में जो सुरक्षा मालिक या राज्य से मिलती है उन्हें वह भी नहीं मिल पाती। उत्पादन के अपने साधनों की देखभाल और उन पर खर्चे की जिम्मेदारी भी उन्हीं की होती है। यानी राज्य और पूँजीपति वर्ग को उजरती मजदूरों की एक ऐसी भारी आबादी उपलब्ध होती है जिसका न केवल जमकर शोषण किया जा सकता है बल्कि उसकी तमाम जिम्मेदारियों से भी वे मुक्त होते हैं। और सबसे बड़ी बात यह कि अतिरिक्त मूल्य की भारी मात्रा पैदा करते हुए भी यह आबादी मालिक होने के भ्रम में मजदूर चेतना और संगठनबद्धता से दूर ही रहती है।

सूक्ष्म ऋण की स्कीम ऐसी ही योजनाओं में एक नया इजाफा है जो बंगलादेश जैसे गरीबों की विशाल आबादी वाले देशों में अत्यन्त कारगर सिद्ध हुआ है। ऐसा नहीं कि ये सूक्ष्म ऋण लेने वाले समूहों या परिवारों का जीवन स्तर इन ऋणों से ऊँचा उठ गया हो। हुआ बस इतना है कि किसी तरह परिवार सहित जुटे रहकर वे गुजारा करने लायक कमाई कर लेते हैं और कर्ज भरते रहते हैं। एक अच्छी-खासी तादाद ऐसे लोगों की भी है जो लगातार कर्ज लेते रहते हैं और किसी न किसी तरह उसकी किश्तें चुकाते हैं। अनेक मामलों में तो ग्रामीण बैंक की किश्तें भरने के लिए उन्हें गाँव के सूदखोरों से भी कर्ज लेना पड़ जाता है। बहरहाल, ऐसे मामले ज्यादा नहीं हैं और यह सूक्ष्म ऋण योजनाओं का मुख्य पहलू नहीं है। इनकी सफलता इसी बात में है कि गरीब इन कर्जों को चुका देते हैं और कर्ज की जकड़बन्दी से निकलने के लिए अपनी जगह-जमीन छोड़कर शहरों में आने के बजाय अपने स्थान पर ही छोटे-मोटे रोजी-रोजगार से बने रहते हैं। बड़े किसान बैंक के कर्जों से ट्रैक्टर और दूसरे संसाधन खरीदते हैं। उनके लिए ये कर्ज खेती के धन्धे में निवेश होता है लेकिन गरीबों के लिए ये कर्ज बस किसी तरह जीते चले जाने और राज्य पर कोई जिम्मेदारी डाले बिना बेशी मूल्य पैदा करते जाने का एक साधन भर होता है।

इन योजनाओं का एक दूसरा पहलू भी है। करोड़ों लोगों की छोटी-छोटी बचतों के दम पर इकट्ठा हुई रकमें बड़े किसानों और उद्योगपतियों के काम आती हैं। ग्रामीण बैंक का गुणगान करने वाले यह कहते नहीं थकते कि इससे कर्ज लेने वालों में सबसे अधिक संख्या महिलाओं की है। लेकिन वे यह नहीं बताते कि इन महिलाओं से बैंक कुल मिलाकर कितनी वसूली करता है। मार्क्स ने कहा है कि पूँजीवाद का महल औरतों और बच्चों की हड्डियों की नींव पर खड़ा है। यहाँ भी वही कहानी है। लाखों गरीब औरतें छोटे-छोटे घरेलू कारोबार करके व्यापारियों के लिए मुनाफा पैदा करती हैं और बैंक का ब्याज भरती हैं। इन सूक्ष्म ऋणों से कोई परिवार धनी या यहाँ तक कि खुशहाल भी बन गया हो, ऐसा कोई उदाहरण सुनने में नहीं आया लेकिन इन छोटे-छोटे ऋणों से की गई वसूली की बदौलत ढाका में ग्रामीण बैंक के मुख्यालय की गगनचुम्बी इमारत जरूर खड़ी हो गई है। औरतों के ये छोटे-छोटे घरेलू कारोबार मध्यकाल के घरेलू उद्योग नहीं हैं। पूँजीवाद के युग में गाँव तक के छोटे-छोटे उद्योग धन्धे बैंकों और बड़े उत्पादकों के मातहत हो चुके हैं। मालिक होने के भ्रम में उजरती मजदूर के तौर पर काम करते हुए एक विशाल आबादी की सर्वहारा चेतना कुन्द बनी रहती है और इस बिखरी हुई आबादी में सांगठनिक एकजुटता की चेतना भी कमजोर रहती है।

एक वाक्य में कहें तो ये योजनाएँ गरीब आबादी के ध्रुवीकरण को धीमा करती हैं और वर्ग संघर्ष पर पानी के छींटे डालने का काम करती हैं। इसीलिए, इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि यूनुस महोदय को अर्थशास्त्र का नोबल नहीं दिया गया बल्कि शान्ति का नोबल पुरस्कार दिया गया है। पूँजीवादी दुनिया को वर्ग संघर्ष की लपटों से बचाने के लिए सूक्ष्म ऋण के फुहारे छोड़ने और क्रान्तिकारी उथल-पुथल की सम्भावनाओं को टालने के लिए गरीबों की फौज को उनकी पिछड़ी चेतना और जीवन-स्थितियों से बाँधे रहने के सफल प्रयोग का ही यह ईनाम है।

— सत्यप्रकाश

उत्तर कोरिया के परमाणु परीक्षण पर साम्राज्यवादियों का दोगलापन

पिछले महीने उत्तर कोरिया के परमाणु परीक्षण पर तमाम साम्राज्यवादी देशों ने एक सुर से चिल्लपों मचानी शुरू कर दी है। बेहयाई भरे दोगलेपन के साथ वे सारे देश उत्तर कोरिया को दुनिया की शान्ति के लिए खतरा पैदा करने और पूर्वी एशिया में हथियारों की होड़ तेज करने के लिए कोस रहे हैं जिनके पास हथियारों के सबसे बड़े जखीरे मौजूद हैं।

उत्तर कोरिया ने कोई गुपचुप परीक्षण नहीं किया है। उसने एक सप्ताह पहले ही परमाणु परीक्षण करने का इरादा जाहिर कर दिया था। परमाणु अप्रसार संधि में प्रावधान है कि अगर इस पर हस्ताक्षर कर चुका कोई देश अपनी संप्रभुता की रक्षा के लिए इससे अलग होना चाहे, तो ऐसा कर सकता है, बस उसे तीन महीने पहले सुरक्षा परिषद को सूचित करना होगा। उत्तर कोरिया ने 2003 में ही संधि से बाहर आने की घोषणा कर दी थी। इसलिए उसने अन्तरराष्ट्रीय कानूनों के मुताबिक कुछ भी गलत नहीं किया। जिस परमाणु अप्रसार सन्धि की साम्राज्यवादी देश बार-बार दुहाई दे रहे हैं, वह स्वयं पूरी तरह असमानता पर आधारित है। इसके तहत कुछ देशों को तो परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र का दर्जा देकर अपना सामरिक परमाणु कार्यक्रम बेरोकटोक चलाने की छूट है, जबकि बाकी देशों को यह इजाजत नहीं है। आज भी अनेक ऐसे देश इस सन्धि से बाहर हैं जिनके पास परमाणु हथियार मौजूद हैं जैसे भारत, पाकिस्तान और इजरायल। इजरायल को तो अमेरिका और पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों के समर्थन के चलते कभी अन्तरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी के मापदण्डों के तहत लाने की बात ही नहीं की जाती। इसके अलावा करीब तीस देश ऐसे हैं जो परमाणु ऊर्जा की अपनी तकनीक के सहारे महज तीन या चार महीनों में परमाणु हथियार बना सकते हैं। लेकिन इन देशों पर अमेरिका या दूसरे देश हाय-तौबा नहीं मचाते।

उत्तर कोरिया को अपनी जनता की सुरक्षा करने का पूरा हक है। अमेरिका लगातार उसे ब्लैकमेल करने की कोशिश करता रहा है। कोरिया की जनता यह नहीं भूल सकती कि कोरियाई क्रान्ति को कुचलने के लिए अमेरिका ने अपनी फौजें कोरिया की धरती पर उतारी थीं और भयंकर दमन और कत्लेआम किया था। समाजवादी चीन की मदद से कोरियाई जनता ने अमेरिकी फौजों को बुरी तरह हराकर अपनी धरती के एक हिस्से से तो खदेड़ दिया लेकिन साम्राज्यवादियों ने कोरिया के दो हिस्से कर दिये और दक्षिण कोरिया में अमेरिकापरस्त पूँजीवादी शासन स्थापित किया। दक्षिण कोरिया की धरती पर भारी संख्या में अमेरिकी फौज मौजूद है और कई-कई फौजी अड्डे हैं। उत्तर कोरिया की ऐन सीमा पर अमेरिकी मिसाइलें पिछले पाँच दशकों से तैनात हैं।

उत्तर कोरिया की जनता अपने देश की गरीबी और मुसीबतों के लिए सीधे अमेरिका को जिम्मेदार मानती है और रोम-रोम से अमेरिकी साम्राज्यवाद से नफरत करती है। अमेरिका भी इस बात को अच्छी तरह समझता है कि कोरिया पर हमला करने का मतलब होगा कि पूरी जनता अपने देश की हिफाजत के लिए जनयुद्ध में उतर पड़ेगी। इतना ही नहीं, दक्षिण कोरिया के साम्राज्यवादपरस्त शासकों के विपरीत वहाँ की अधिकांश जनता उत्तर कोरिया के साथ है, भले ही बुर्जुआ मीडिया आबादी के एक छोटे से हिस्से के विरोध को ही बढ़ा-चढ़ा कर दिखाता रहे। लेकिन साम्राज्यवादी अपनी फितरत से बाज नहीं आ सकते। वे इराक में और अफगानिस्तान में बुरी तरह पिटने के बाद भी इससे कोई सबक लिए बिना उत्तर कोरिया पर हमला कर सकते हैं। इसलिए उसे अपनी रक्षा करने के लिए वह सब कुछ करने का हक है जिससे हमलावरों में खौफ पैदा किया जा सके।

यह सच है कि उत्तर कोरिया आज वास्तविक अर्थों में समाजवादी देश नहीं रह गया है। वहाँ समाजवादी प्रयोगों की प्रगति रुक गयी है और अनेक विकृतियाँ भी मौजूद हैं। लेकिन कोरियाई जनता और वहाँ के नेतृत्व ने अभी पूँजीवादी राह के राहियों को हावी नहीं होने दिया है। कोरियाई जनता के संघर्ष का इतिहास बहुत शानदार है और इस बार भी वह साम्राज्यवादियों को मुँहतोड़ जवाब देने के लिए तैयार है। अगर साम्राज्यवादी अपनी सनक में कोई भी हिमाकत करते हैं तो उन्हें एक बार फिर मुँहकी खानी पड़ेगी।

भारतीय शासकों का पैंतरा

(पेज 1 से आगे)

को यह घुट्टी पिलाये कि भूमण्डलीकरण की नीतियों के बिना मुक्ति संभव नहीं है, इनके संगठित और सही विरोध को आंतरिक सुरक्षा को खतरा बताये आदि-आदि। देश में किसी भी पार्टी की सरकार आये, उसके नुमाइन्दे को यही करना है। अब इस नौटंकी को देख रही मेहनतकश जनता को तय करना है कि वह इसे चुपचाप देखते हुए घुट-घुट कर जीती रहेगी या फिर क्रान्तिकारी कवि पाश के शब्दों में यह कहने के लिए उठ खड़ी हो कि :

मैंने टिकट खर्च कर
तुम्हारे लोकतंत्र का नाटक देखा है
अब तो मेरा नाटक हॉल में बैठकर
हाय-हाय करने और चीखें मारने का
हक बनता है
तुमने भी टिकट देते समय
टके भरे की छूट नहीं दी
और मैं भी अपनी पसन्द का
बाजू पकड़कर
गद्दे फाड़ डालूँगा
और पर्दे जला डालूँगा।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंगः कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादकः डा. दूधनाथ • सम्पादकीय पताः 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 • सम्पादकीय उपकार्यालयः जनगण होम्यो सेवासदन, मयांदपुर, मऊ